Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

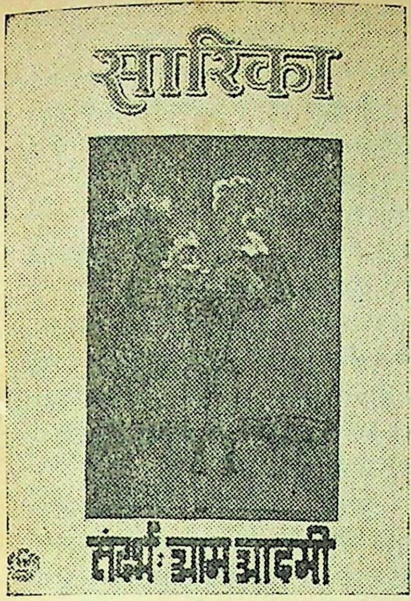

□ मुखपृष्ठ के कलाकार :
प्रमोद गणपत्ये

इस बार का मुखपृष्ठ उस प्रदर्शनी की एक पेंटिंग है जिसे प्रमोद गणपत्ये ने खासतौर पर स्व. सर्वेश्वरजी के निधन के बाद उनकी अठावनवीं वर्षगांठ पर नयी दिल्ली स्थित श्रीराम सेंटर में प्रदर्शित किया था. सर्वेश्वरजी की कविता के प्रतीकों को विजुलाइज करने की सही कोशिश के साथ-साथ परिवेश की गहरी पकड़ इस प्रदर्शनी का प्रमुख आकर्षण रही. विविध पात्रों, परिवेश और स्थितियों को अपने अंदाज में विशिष्ट कंपोजीशन और ट्रीटमेंट के ज़रिए प्रस्तुत करते हुए प्रमोद कविता की आत्मा पकड़ने में समर्थ रहे.

उज्जैन से दिल्ली आकर भी प्रमोद ने अपने काम करने का तरीका नहीं बदला. वे अपनी धीमी गति से लेकिन लगातार काम करते रहे. स्केच के साथ उनका ज्यादा लगाव है और अब तक वे तकरीबन चौदह हजार से भी ऊपर स्केच बना चुके हैं. आर्कलौजी और म्यूजियोलौजी में एम.ए. और फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा करने के अलावा उनके अनुभवों में डॉक्यूमेंट्री फिल्म भी शामिल हैं. फिलहाल प्रमोद 'राष्ट्रीय संग्रहालय' से संबद्ध हैं और मालवा रागमाला पर शोध कर रहे हैं. □

□ आवरण पारदर्शी : पवन महेंद्रू

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३७०; १ से १५ दिसंबर, १९८४

कहानियां

8. एक पुरानी कहानी (उर्दू) : **कुर्तुल-एन-हैदर**
13. ये कहानी मेरी नहीं है : **विभु कुमार**
17. कुत्ते की मौत : **रमेश गुप्त**
22. किस्सा अंग्रेजी दां का : **श्यामलाल शर्मा**
26. बेबीलोन : **शैवाल**
31. विद्रोह (पंजाबी) : **गुरुमुखसिंह जीत**
34. अगला महीना : **भीमसेन त्यागी**
42. काला हंस : **शालिग्राम शुक्ल**
48. परास्त : **नवनीत मिश्र**
53. गहरी नींद : **सुभाष अखिल**
56. दर्द का नाता : **कुंथा जैन**
64. परछाइयां मरती हैं (अंग्रेजी) : **सोनिया भलोत्रा**

साक्षात्कार

39. भारत में गरीबी एक प्रमुख समस्या है जिससे बचकर नहीं लिखा जा सकता... : कृष्ण बलदेव वैद से ए. के. मित्तल की बातचीत

लघु रचनाएं

15. रफ कॉपी : **सुभाष नीरव**
19. कीमती खयाल : **मुल्ला नसरुद्दीन**
24. रोते-रोते सो गयी : **हरीश नवल**
28. 'दो बीघा जमीन' और बीयर : **बलराज साहनी**
30. उसका खजाना : **बाला दुब**
36. ग़ज़ल : **अदम गौंडवी**
44. उसका संरक्षक : **जगदीश कश्यप**
46. ग़ज़ल : **रऊफ परवेज**
50. विकल्प : **सूरज प्रकाश**
52. मैस किसकी : **रामनारायण उपाध्याय**
58. दलाल : **राधेश्याम**
60. पहली छुट्टी : **हंसराज रहबर**
62. संपन्न : **रमेश मिश्र**
66. हादसा : **महेश दर्पण**

स्थायी स्तंभ

6. आपकी बात
37. तस्वीर बोलती है : **एन.के. सरीन**
47. और भुलाये न बने
67. भरतमुनि के वंशधर : **हृषीकेश सुलभ**
69. पखवारे की पुस्तकें : **हरीश नवल, बलराम**
72. हलचल
74. नयी पत्रिकाएं

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

संपादकीय पता :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष : 24; अंक : 366
1-15 अक्तूबर, 1984

ठहरी हुई बहस

पीढ़ियां : आमने-सामने के अंतर्गत प्रकाशित **'आज की कहानी पहले से ज्यादा ईमानदार है'** में लगा कि चर्चा कुछ कम ईमानदारी से हुई. बहस आज की कहानी और पुरानी कहानी के तत्वों, मूल्यों व अंतर पर कम, एवं व्यक्तिगत प्रभावों और व्यक्ति विशेष पर अधिक हुई. बीच-बीच में कई अनर्गल पड़ाव भी आते रहे यथा—सुनीताजी अंग्रेजी कहानी पर ठहरी हुई लगीं जबकि इसका परिचर्चा से दूर तक वास्ता नहीं था. कुसुम अंसल डॉ. नामवर सिंह को ही घसीटती रहीं. कहानी की जगह बीच-बीच में महिला-पुरुष कथाकारों की प्रतिद्वंद्वात्मकता ने कई बार विघ्न डाला. या फिर चर्चा में आंदोलन और गुटबाजी ही छायी रही. क्या इन मुद्दों से हटकर आंदोलन, खेमेबाजी और व्यक्तिगत प्रभावों से मुक्त किसी विषय पर कोई चर्चा नहीं हो सकती?

● **हरीश गोयल, धामपुर (उ. प्र.)**

खूब, बहुत खूब

कहानी **'गिरफ्तारी'** (श्रीलाल शुक्ल) मात्र पुलिसवालों को ही बेनकाब नहीं करती बल्कि समाज के बहुत से सफेदपोशों के घिनौने चेहरे से परदा हटाती है. पर कहानी कहीं-कहीं उबाऊ भी हो गई है. कहानी का नायक जो अपने जमाने का चलता-फिरता नेता रहा है एवं जिसकी साख अब भी बनी हुई है, और जो अब भी उच्च अधिकारियों पर अपना प्रभाव रखता है वह पुलिस के आने एवं उसके यह कहने से कि वह उसे गिरफ्तार करना चाहती है, इस प्रकार घबरा जाता है एवं बचकाना नाटक आरंभ

कर देता है तथा पुलिस का रिवाल्वर छीन लेता है. इस प्रकार की हरकत उस नेता को न तो शोभा देती है और न ही उससे ऐसी आशा की जा सकती है.

काशीनाथ सिंह भी खूब लिख रहे हैं. **'वे तीन घर'** में उन्होंने दोनों नायकों के साथ बराबर का इंसाफ किया है. परंतु जिस खूबसूरती से उन्होंने विपत के आचरण का वर्णन किया है वह बहुत पसंद आया. यह सच है कि विपत जैसे लोग आज भी हमारे समाज में बहुत हैं जो आरंभ में एक आदर्श लेकर चलते हैं पर वक्त के साथ-साथ उनका आदर्श बदलता जाता है एवं उनके व्यवहार में आप से-आप परिवर्तन आ जाता है जिसे वे स्वयं भी महसूस नहीं कर पाते. मदन जैसे लोग तो अब उंगली पर ही गिने जाते हैं.

● **मुश्ताक अहमद नूरी, पुर्णियां**

पिछले अंक में

पिछले अंक में नयी पत्रिकाएं स्तंभ में उल्लिखित 'समकालीन भारतीय साहित्य' पत्रिका के प्रकाशक हैं- साहित्य अकादमी, रवींद्र भवन, 35 फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-110001 और संपादक हैं—सुपरिचित कथाकार शानी.

पिछले अंक में प्रकाशित कहानी 'सिद्धार्थ के लौटने तक' के लेखक का पता अधूरा छप गया है. उनका पूरा पता है—श्री सुरेंद्र अरोड़ा, 67 सी, पाकेट-III मयूर विहार, दिल्ली-110091

फिसले जो उस मुकाम से

'गिरफ्तारी' (श्रीलाल शुक्ल) इतनी बढ़िया, सटीक व सधी हुई है कि दूसरे किसी भी आलोचनात्मक औपचारिक चौखटे में जड़ना जंचता ही नहीं. एक ऐसा तीर, जो बहुधा, पहचानी हुई टीस का ही द्योतक है.

काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानी **'वे तीन घर'** जानबूझकर इतनी लंबी की है. शायद उनको लगता रहा हो कि जो बात वह कहना चाहते हैं वह अभी पूरी नहीं हुई.

'कर्फ्यू' (राकेश वत्स) अपने खास पात्र चित्रण के बावजूद अच्छी तो लगी पर फिर भी वर्णनात्मक शैली कहीं-कहीं पाठक को उखाड़ती है. **'पीढ़ियां आमने-सामने'** का विषय **'आज की कहानी पहले से ज्यादा ईमानदार है'** से हटता-हटता कल की आलोचना व आज की आलोचना में परिणत हो उलझा और उलझता ही चला गया. **'तबादला'** (गोपाल शेखरन) कहानी का मनोवैज्ञानिक परिवर्तन जो व्यक्ति को भ्रष्टाचार के तानों-बानों से पैदा हुई कसक व स्थानीय मोह से निजात दिलाता है और वह सभी बहाने पैदा करता है जिसके सहारे आदमी 'ऊपर तक' जाने को तैयार है, वह बड़बोलापन या भभकता संकेत क्या इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन से संभव है? **'दिसंबर इकत्तीस'** (दुर्गामाधव मिश्र) प्रभावित करती है, अनुवाद भी अच्छा हुआ है. **'रकम रेट'** (नफीस आफरीदी) का लेखक बधाई का पात्र है.

'बीवी भई कोतवाल' क्या कहानी ही है?

● **मनोज शर्मा, जम्मू**

और आक्रोश तिरोहित हो गया

सारिका में एक सशक्त कहानी **'वे तीन घर'** पढ़कर अभी-अभी यह पत्र लिखने बैठ गया हूं. **'वाहे गुरु दी फतह'** पढ़ने के बाद काशीनाथ सिंह के प्रति जो आक्रोश मन में उपजा था, इस कहानी के बाद तिरोहित हो गया. मैं समझता हूं, एक लंबे अर्से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद मैंने एक अच्छी, बेहद अच्छी कहानी पढ़ी है.

'वे तीन घर' पढ़कर एक बात और मन में उभरी है. क्या विपत समसामयिक संदर्भों में एक संपूर्ण गांधीवादी चरित्र नहीं है? और क्या मदन अपने-आप में एक गांधी नहीं है? न जाने क्यों मुझे बार-बार ऐसा ही लगता है.

भाई काशीनाथ सिंह को ऐसी कहानी के लिए ढेरों बधाई.

● **गौरीशंकर, पूर्णियां (बिहार)**

मथुरादास की चिंता जायज है

'मथुरादास की डायरी' पढ़ी. जानकर प्रसन्नता ही हुई कि अन्य साधारण जनता-जनार्दन की भांति मथुरादास को भी चुनावी हवा लग गई जो एक लोकतांत्रिक देश में स्वाभाविक है. जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आता जा रहा है वैसे-वैसे मथुरादास की तरह ही नेताओं को भी चिंता सता रही है कि इस बार विधायकों की दल-बदल दर क्या होगी? वास्तव में विधायकों की दल-बदल दर मालूम करना बहुत कठिन है. अर्थशास्त्र का नियम यह बतलाता है कि मांग अधिक और पूर्ति कम होगी तो वस्तु का मूल्य बढ़ेगा तथा मांग कम और पूर्ति अधिक होगी तो वस्तु का मूल्य घटेगा. चूंकि विधायक क्रियाशील होते हैं इसलिए वे भी वस्तु की श्रेणी में ही आते हैं. चुनाव के बाद जितने विधायक चुनकर आते हैं उनकी संख्या सीमित रहती है और अगली फसल पांच वर्ष के बाद ही मंडी में आती है इसलिए सरकार बनाने तथा बहुमत सिद्ध करने के लिए इनकी मांग बढ़ती जाती है तथा साथ-साथ इनका मूल्य भी बढ़ता जाता है. अतः इनकी दल-बदल दर निश्चित नहीं रह पाती और यह पच्चीस हजार से लेकर पच्चीस लाख तक या इससे भी अधिक हो सकती है.

● **मनोज कुमार त्रिवेदी, बेगूसराय**

चंदन बिना सुगंध

राकेश वत्स की कहानी **'कर्फ्यू'** हृदय की उस ग्रंथी को खोलने में सफल रही, जिसे चेतना कहते हैं. शाश्वत और प्रभावपूर्ण कथानक शुरू से अंत तक चेतना को झकझोरता रहा. लेखक का एक वाक्य—"प्रधान मंत्री के इस सवाल पर कि हिंदोस्तान कैसा लग रहा है. अंतरिक्ष यात्री का जवाब था—सारे जहां से अच्छा!" बड़ा करारा और मर्मांतक तमाचा सिद्ध हुआ हमारी आज की प्रासंगिकता पर, व्यवस्था पर. अन्य कहानियों में **'गिरफ्तारी'**, **'वे तीन घर'** बेहद अच्छी लगीं. परंतु तुलसी का चंदन सुगंध न दे सका और रही बात मथुरादास की डायरी की, सो कुछ हाल न पूछो तो ही बेहतर है.

● **बृजमोहन दुबे, गंजबासोदा (म.प्र.)**

सूत्रधार फिर गच्चा खा गये

'भरतमुनि के वंशधर' में सूत्रधार एक बार फिर गलती कर बैठा है. गलती शायद गलत जगह पर पहुंच जाने पर हुई है. सूत्रधार के एक प्रश्न—खतरा किससे है? के उत्तर में सतीश आनंद ने कहा—खतरा रंगमंच से है. सत्यता तो यह है कि खतरा रंगमंच से नहीं, सतीश आनंद को जनवादी रंगमंच से है. यदि श्री आनंद की मानव मूल्यों के प्रति इतनी ही श्रद्धा है तो 1982 में जब 'बिहार सरकार युवा महोत्सव' का सारे रंगकर्मी, लेखक, कवि, चित्रकार, पत्रकार, बहिष्कार कर रहे थे तो उस समय श्री आनंद साहब निर्णायक मंडल में चुप्पी साधे क्यों बैठे थे?

मैं उन दिनों बिहार में था, खास तौर पर पटना में. श्री आनंद का बिहार की लोक शैली से रुझान का तात्पर्य सिर्फ सरकार की राशि का बंटाधार करने से है. जब जनवादी कलाकार पुलिस की लाठियां खा रहे होते हैं, उस समय ये कहां होते हैं? पटना में रंगकर्मियों के लिये कोई रंगमंच नहीं है. यदि है तो पुलिस के कब्जे में है. मैं पूछता हूं 'प्रेमचंद रंगशाला' को पुलिस से मुक्ति दिलाने के लिये इन्होंने कितनी बार हाथ उठाये हैं. सच्चाई तो यह है कि इनकी संस्था 'कला संगम' को खतरा दिखाई पड़ रहा है.

● **जिज्ञासु, बड़ौदा (गुजरात)**

टाइम्स ऑफ इंडिया राहत कोष

आज एक ऐसा हादसा हमारे सामने है जिसने हिंदुस्तान की जड़ों को हिला दिया है. कई शहरों में दंगों के बाद सिख लोग बेघरबार हुए हैं, जायदादें जली हैं और दूकानों के दरवाजे बंद हैं. बच्चे अनाथ हुए हैं और कई परिवारों में रोजी कमाने वाला नहीं है. जिन्होंने भुगता है, उन्हें यकीन दिलाने की जरूरत है कि सारा देश विपदा में उनके साथ है.

दंगों से सतायी हुई आबादी की राहत के लिए टाइम्स प्रकाशन समूह ने एक कोष इकट्ठा करने का निश्चय किया है और पहले योगदान के रूप में बेनेट कोलमैन एंड कंपनी ने एक लाख रुपये की राशि अर्पित की है.

सारिका के जागरूक पाठक के नाते 31 अक्तूबर के बाद हुई त्रासदी ने आपको भी जरूर हिला दिया होगा. आप उनके लिए कुछ करना चाहते होंगे. तो आइये, और टाइम्स राहत कोष में ज्यादा से ज्यादा धन-राशि जमा कराइए.

कृपया अपनी रकम नकद या चेक या ड्राफ्ट या मनीआर्डर द्वारा 'टाइम्स ऑफ इंडिया रिलीफ फंड' के नाम से इस पते पर भेजें :

टाइम्स रिलीफ फंड, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002.

यह राशि टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के किसी भी दफ्तर में जमा करायी जा सकती है. आयकर अधिनियम की धारा 80 (जी) के अंतर्गत यह राशि आयकर से मुक्त होगी.

आपका पैसा इस बार सिर्फ दान का पैसा नहीं होगा. वह भारतीय लोकतंत्र एवं धर्मनिरपेक्षता की नींव को भी पुख्ता करेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्तफाक से एक अंधे फकीर की कहानी जानती हूं और आपको सुनाना चाहती हूं. ये फकीर जो बरसों देहरादून की बेहद खुशनुमा सड़क के किनारे, जिसके एक तरफ खूबसूरत कोठियां थीं और दूसरी तरफ साफ पानी की शोर पहाड़ी नहर बहती थी, बैठा भीख मांगता रहता था. जब पाला गिरता था, तब भी और जब तेज धूप में कोलतार की सड़क पर धुआं-सा उठता था, तब भी, एक नीले पत्थर पर कश्मीरी शॉल का एक गंदा टुकड़ा बिछाये खामोश बैठा रहता था—और थोड़ी-थोड़ी देर बाद हाथ फैलाकर अल्लाह. . . अल्लाह करता था. उसकी आंखों की जगह दो सुर्ख धंसे हुए टीले-से थे, वे दायें-बायें घूमते रहते थे.

"खिदमतगार, खानसामाजी आये हैं." रोज सुबह नौ बजे पिछले बरामदे में एक डपटदार आवाज सुनाई देती. उसके बाद खानसामाजी बूट सीढ़ियों पर उतारते, शर्मीले अंदाज से चिक उठाकर सफेद मोजों में दबे पांव कमरे में दाखिल होते हुए तकरीबन सलाम करने के बाद बगल से रजिस्टर निकालकर सौदे का हिसाब पेश करते. ये रजिस्टर खानसामाजी की हस्ती की तरह अनोखा था—और मैं अक्सर खानसामाजी से फरमाइश करती थी कि वह मुझे इस रजिस्टर को पढ़ने की इजाजत दें—खानसामाजी कुछ ऐसी लिपि में हिसाब लिखते थे, जो पुरानी जबान की लिखावट थी और जो उन्होंने खुद ईजाद किया था. मसलन गोश्त के लिए बकरे की तस्वीर, मुर्गा, अंडे, गाजर, चुकंदर, आलू वगैरह के लिए उनकी तस्वीर, रुपये, आने, पाई और सेर, पाव, छटांक के लिए बहुत खास किस्म के निशान उन्होंने खुद तय किये थे, हिसाब में अगर किसी शख्स का नाम लिखना होता तो उसकी जगह उसकी शक्ल बना दी जाती.

खानासामाजी के असली नाम से कोई वाकिफ न था. उनका और उनकी बीवी अल्लादी का हम लोगों से तआरुफ बुद्धन के जरिये हुआ था, जो खुर्जे की एक खातून थीं और कभीकभार दोपहर के वक्त हमारी तरफ आ निकलती थीं और बरामदे की फर्श पर धूप में लेटकर 'रंग लाती है हिना पत्थर पे घिस जाने के बाद' अलापा करती थीं. बुद्धन जवानी में बेवा हो गयी थीं. सिलाई करके अपना पेट पालती थीं. एक रोज उनके साथ एक बूढ़ी खातून भी आयीं, जिन्होंने सुर्ख रंग का दुपट्टा, केले की कमीज और गुलाबी रंग का तंग पायजामा पहन रखा था—और कलाइयों में हरी-हरी फिरोजाबादी चूड़ियां खनखना रही थीं. बुद्धन ने तआरुफ कराया कि ये अल्लादी हैं और इनके मियां खानसामाजी साहब लोग के यहां खाना पकाते हैं, मगर आजकल रोजगार से नहीं हैं. . .

उसके चंद रोज बाद खानसामाजी हमारे यहां काम करने के लिए आ गये. खानसामाजी एक बहुत बड़ा पुराना संदूक भी अपने साथ लाये थे, जो उन्होंने अपनी कोठरी में बड़े करीने से एक तरफ रखकर उस पर कढ़ा हुआ मेजपोश बिछा दिया. दीवारों पर अंग्रेज बच्चों की तस्वीरें लगायीं और कागजी फूलोंवाला एक गुलदान भी ताक में सजा दिया. अल्लादी एक बेहद सलीकेमंद खातून थीं और अपनी कोठरी को आईने की तरह साफ रखती थीं. उनके कोई औलाद नहीं थी,

एक पुरानी कहानी

• कुर्तुल-एन-हैदर

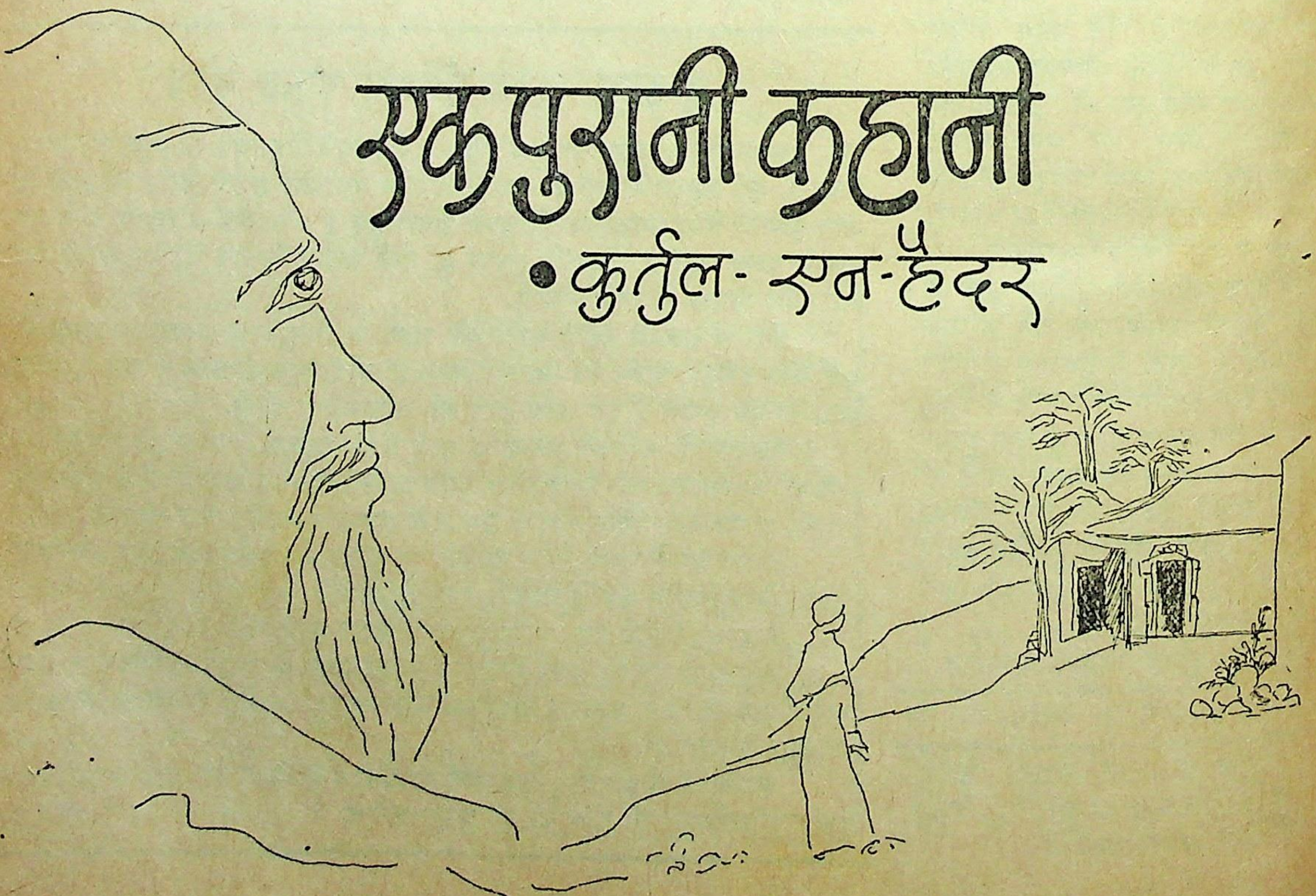

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक दूसरे के लिए समर्पित. शौहर की खिदमत तो खैर अल्लादी का फर्ज था, मगर खानसामाजी भी बीवी को बहुत चाहते थे. वे खुद जितने जहीन थे, अल्लादी उतनी ही बेवकूफ थीं और खानसामाजी बड़े प्यार से उनकी तमाम हिमाकतों का जिक्र करते थे. खानसामाजी की चपटी नाक, बेहद काला रंग, बहुत बड़ी तोंद, कुबड़ी लंगे, चुग्गी दाढ़ी, हंसते तो बाछें कानों तक फैल जातीं. बेहद खुशमिजाज थे. किसी जमाने में पीरीमुरादी भी कर चुके थे. गंडे-ताबीज के उस्ताद थे और साहब लोग के साथ इंग्लिस्तान तक हो आये थे. रंगून, मद्रास और पूना तो उनके लिए कोई बात नहीं थी. लाहौर की दास्तान उनकी पसंदीदा दास्तान थी.

एक रोज मुझे किसी शरारत पर बहुत जबरदस्त डांट पड़ी थी और मैं सुनसान बरामदे की सीढ़ियों पर बैठी चुपचाप रोने में मसरूफ थी. इतने में खानसामाजी उधर से गुजरे, ठिठककर मुझे देखा और आगे चले गये.

थोड़ी देर बाद आंसुओं की झिलमिलाहट में से मुझे छज्जे पर गुलाबी दुपट्टा लहराता नजर आया और अल्लादी करीब आ गये और मुझे बड़े अपनेपन से अपनी कोठरी में चलने की दावत दी. मैं आंसू पोंछकर खामोशी से उनके साथ हो ली. कोठरी में खानसामाजी अपना काला पुराना संदूक खोले मेरे मुंतजिर बैठे थे. मुझे देखकर उन्होंने संदूक का सामान निकालकर फर्श पर फैला कुछ तलाशने लगें.

संदूक में से जो तामझाम निकला, वह मेरे लिए बेहद नया साबित हुआ. पुराने फैशन के झालरदार फ्राक, पुराने

सांप्रदायिकता का सर्वनाशी बहाव आता है तो हम सब अपनी आंखों की बीनाई खो बैठते हैं और जाने-अनजाने उन्हीं बातों का समर्थन करने लगते हैं, जिन्हें सामान्य हालत में गलत समझते हैं, लेकिन क्यों? खोई हुई बीनाई की तलाश करती कथा——

कोट और रेशमी साये, तरह-तरह की टोपियां, चीनी के बर्तन, टूटी हुई घड़ियां और टाइम-पीस. जापानी पंखे, मालाएं, रंगीन तस्वीरों वाली अंग्रेजी किताबें, सजावट का दकियानूसी सामान और सुर्ख रेशमी रूमाल में लिपटा सर्टिफिकिटों का पुलंदा. खानसामाजी ने बताया कि ये सारी चीजें उनको अलग-अलग साहब और मेम लोगों ने बिलायत जाते वक्त अपनी निशानी के तौर पर दी थीं.

"पहले वक्तों का साहब लोग बहुत नेक होता था बेटा," उन्होंने कहा, "मगर जब से कांग्रेस ने शोर मचाया है, साहब लोग भी बदल गया है." ढूंढ़-ढांढ के उन्होंने एक बड़ी-सी सोती-जागती अंग्रेजी गुड़िया निकाली, उसे बहुत संभालकर झाड़ा-पोंछा और अदब से मेरे सामने रख दिया. मेरा जी चाहा कि लपककर गुड़िया उठा लूं. मगर खयाल आया कि डांट पड़ेगी. खानसामाजी और अल्लादी मुझे बड़ी उम्मीद की नजरों से देखते रहे. आखिर हिचकिचाहट के साथ मैंने गुड़िया उठायी और खुशी और घबराहट के मारे शुक्रिया अदा किये बगैर जल्दी से बाहर भाग आयी.

उसके बाद जब भी खानसामाजी उन पुरानी यादों को अपने बरामदे में धूप देते तो मैं जाकर वहां बैठ जाती और वह इन पुरानी-धुरानी चीजों से जुड़ी अपनी कहानियां सुनाया करते. ये चीजें उनके लिए बिल्कुल बेकार थीं, मगर वह इन्हें सजाये हुए थे.

हम लोग देहरादून से लखनऊ आने वाले थे, मगर खानसामाजी साथ चलने पर राजी न हुए, क्योंकि अल्लादी बीमार रहने लगी थीं और परदेश जाने पर आमादा न थीं. खानसामाजी को हम लोगों से जुदा होने का बड़ा अफसोस था, मगर उन्होंने कहा, "इस नेकबख्त ने सारी उम्र दुख-सुख में मेरा साथ दिया है, जवानी में मैंने उसके दिल को बहुत भारी दुख पहुंचाये हैं. अब आखिर वक्त में इस सतवंती की बात कैसे टाल दूं."

जिस रोज हम देहरादून से रवाना होनेवाले थे और सारा सामान मालगाड़ी पर लदाने के लिए स्टेशन भेजा जा चुका था, खानसामाजी कहीं से एक छोटा-सा ठेला ले आये, पुरानी संदूक, हूं... हूं. करते हुए उस पर चढ़ाया और बहुत संभाल कर शाल उसके ऊपर बिछा दिया. अल्लादी संदूक का कुंडा पकड़कर ठेले पर चढ़ीं और अपने गुलाबी दुपट्टे का घूंघट काढ़कर बंदरिया की तरह संदूक पर बिछे शाल पर बैठ गयीं. खानसामाजी ने 'या-गौशुल आजम' का हलका-सा नारा लगाया और सिर झुकाये ठेला ढकेलते फाटक से बाहर निकल गये. मैं उनके पीछे-पीछे दौड़ी, मगर वे सिर झुकाये ठेला ढकेलते कर्जन रोड पर बहुत दूर निकल चुके थे.

तीन साल निकल गये. हम लोग कुछ अरसे के लिए देहरादून गये हुए थे. एक रोज मैं करनपुर के मोहल्ले में अपने चंद अजीजों के यहां इतवार मना रही थी. उनका मकान बड़ा शानदार था. बराबर में दो आंगन उसके साथ मस्जिद और इमामबाड़ा, लंबे-लंबे कमरे, जिनके ऊंचे रोशनदान पीछे साफ सुथरी गली में खुलते थे. रोशनदान के शीशे नीले और नारंगी थे

अचानक गली में से आवाज आयी, "तोहफा कबाब, तोहफा कबाब ले लो... तोहफा कबाब..." फिर वह आवाज दूर चली गयी.

थोड़ी देर बाद एक बच्चा तामचीनी की मैली-सी रकाबी में सींक कबाब लिये अंदर आया, "बाजी. . . लीजिए कबाब. . ." उसने एक अलमारी पर चढ़कर रकाबी मेरी तरफ बढ़ायी. मैंने दूसरी आलमारी की छत पर से हाथ बढ़ाने की कोशिश की तो प्लेट नीचे गिर गयी.

बराबर के कमरे से किसी आया ने डांटा, "ये क्या हुल्लड़ हो रहा है?"

"कुबड़ा कबाबी बाजी के लिए कबाब लाया है." बच्चे ने जवाब दिया.

"तो ले लो और उसे पैसे दे आओ." आपा ने आवाज दी.

ड्योढ़ी में क्या देखती हूं कि खानसामाजी मैले चिक्कट कपड़े पहने लपाझप छोटी-सी अंगीठी दहकाते हुए आवाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा रहे हैं, "अरे मेरी बिटिया के लिए कबाब ले जाओ."

"खानसामाजी." मेरे मुंह से निकला. उन्होंने चौंककर मुझे देखा. बाहें कानों तक पहुंच गयीं. आंखों में आंसू आ गये. और जल्दी से हाथ जोड़कर बोले.

"आज ही मैंने बफातन बुआ के लौंडे से सुना कि बिटिया नखलऊ से आयी हैं. सो, मैं कबाब लेकर हाजिर हो गया." इतना कहकर वे अंगीठी पर सींक उलटने-पलटनें में मसरूफ हो गये. मैं हैरान और उदास उनको देखती रही और सोचने लगी कि इतने ठाठ-बाट और आन-बान के खानसामाजी को बाजारी कबाबिया बनते हुए किस कदर तकलीफ हुई होगी.

"मगर आप नौकरी क्यों नहीं करते?" मैंने पूछा.

"आप लोगों के जाने के बाद गोलागढ़ में एक साहब के यहां काम मिला था, मगर उसे मालूम हुआ कि घरवाली को बड़ी बीमारी है, उसने छुट्टी दे दी."

"अल्लादी कैसी हैं अब?"

"गुजर गयीं." उन्होंने धुएं से स्याह टूटे हुए पंखे से अंगीठी दहकाते हुए जवाब दिया.

"फिर एक और मेम के यहां काम मिला, मगर वह झक-झक बहुत करती थी. उसने गाली दे दी. . . डेम ब्लाडी बास्टर—निग्गर—ब्लैक मैन—" मैंने कहा, 'सलाम'. और चला आया. "बेटा! अब इस सफेद दाढ़ी के साथ अंग्रेज की गाली नहीं सही जाती."

"मगर अल्लादी. . ."मैंने फिर कहा.

"मर गयी नेकबख्त. खैराती अस्पताल में डाला. मर गयी तो लेप दिया. अब अकेली जान के लिए क्या गुलामी करूं. इतना बूढ़ा हो गया हूं बेटा, सुनाई भी कम देता है. अब मुझे कौन नौकर रखेगा."

"और आपका वह संदूक?"

"अल्लादी की बीमारी का खर्चा बहुत था बेटा, जब कहीं से पैसे उधार नहीं मिले तो सारी पेटी कबाड़ी के हाथ औने-पौने बच दी. ये लीजिए, गरमा-गरम तोहफा कबाब."

सितंबर 1947 में चंद रोज पहले मसूरी से आयी थी और बेली लाज के बरामदे में अखबार में बटवारे की तफसील और हिंदुस्तान-पाकिस्तान का नया नक्शा देखने में मसरूफ थी. हल्की-हल्की बारिश हो रही थी और रेडियो पर मैसूर के फसाद की खबरें आ रही थीं. इतने में फाटक पर एक साया डोलता नजर आया, "जाओ इसे इकन्नी दे आओ." मेरी मेजबान बेगम मसूद ने नौकर से कहा, नौकर ने चंद मिनट बाद वापस आकर कहा, "वह अंधा फकीर मुझसे मिलना चाहता है."

मैं निकली. नाबीना भिखारी आंखों के सुर्ख टोले दायें-बायें घुमाता फाटक पर चुपचाप खड़ा था.

"खानसामाजी. . ." मैंने भागते हुए करीब जाकर कहा. वह लाठी से टटोलता-टटोलता आगे बढ़ा. बजरी पर बैठकर मेरे पांव पकड़ लिये और फूट-फूटकर रोने लगा.

अभी बहुत से दुख उठाने बाकी हैं. मैंने दिल में दोहराया.

"बाजी, सफी अहमद किदवई मारे गये." मैंने चौंककर पीछे देखा. बरसाती में निकलकर बेगम मसूद की लड़की सोफिया रोते हुए चिल्ला रही थी, "अभी-अभी मसूरी से फोन आया है." मैं खड़ी की खड़ी रह गयी.

"क्या हुआ? क्या हो रहा है?" खानसामाजी ने चेहरा ऊपर उठाकर सवाल किया.

"बाजी." सोफिया ने दहशत भरी आवाज में फिर पुकारा.

"मैं अभी आती हूं खानसामाजी."

"अच्छा मैं यहीं बैठा हूं." वे लाठी टेककर उठे और कांपते टटोलते हाथों से खंभे का सहारा लेकर पुलिया पर बैठ गये.

मेरे अंदर वापस जाते ही एक फौजी अजीज की कार तेजी से बरसाती में आकर रुकी और फौजी अजीज ने मुझसे कहा कि मैं फौरन उनके साथ घर चलूं, क्योंकि शाम की गाड़ी से हम लोग देहरादून से रवाना हो रहे हैं, लेकिन रवानगी के इंतजाम में बहुत देर हो गयी और जब हम लोग बली लाज से निकले तो दिन ढल चुका था. सड़क पर पहुंचकर मैंने फौजी अजीज से कहा कि कार रोक लें.

"क्यों? अब किसी से मिलने-मिलाने का वक्त नहीं है. ट्रेन छूट जायेगी." उन्होंने घबराकर जवाब दिया.

हम लोग म्युनिस्पल रोड पर एलेक्जेंड्रा पैलेस में ठहरे थे. बेहद रोमांटिक एलेक्जेंड्रा पैलेस किसी जमाने में अंग्रेजों का रिहायसी होटल था और इसे हमारे उन अजीजों ने अपनी रिहायस के लिए खरीद लिया था. उसके जालीदारी दरीचों पर गुलाब की बेलें चढ़ी थीं और कमरों में अंग्रेजों के वक्त की तस्वीरें अब तक टंगी थीं. जिस वक्त मैं वापस पहुंची तो सामान बांधा जा चुका था और चमकीले फर्श की दीवारों पर लार्ड मिंटो, लार्ड इर्विन और दूसरे वाइसरायों की तस्वीरें आतिशदान के ऊपर हमेशा की तरह मुस्करा रही थीं.

उस शाम हम किसी वजह से रवाना न हो सके. रात को घरवाले कोठी की ऊंची-नीची सुर्ख छतों पर बंदूकें लिये टहलते रहे. चारों तरफ अंधेरे बाग में ऊंचे-ऊंचे दरख्त सरसराते और सामने मसूरी की रोशनियां झिलमिलाती रहीं. पिछले पहर टूट कर मेघ बरसा—सुबह होते-होते आसमान साफ था और फिजां में फलों और फूलों की महक उमड़ रही थी. नाश्ते के बाद मैं कुछ जरूरी चीजें लेने के लिए अपने घर 'आशियाने' गयी, एक बूढ़ा सरदार एक बरामदे के दर में नमाज के पुराने तख्त पर बैठा जपजी साहब का पाठ कर रहा था. मैंने आगे बढ़कर उन बूढ़ों में से एक से कहा, "मैं बाक्स रूम खोलना चाहती हूं."

"मालिक मकान हो आप. . .?"

"जी."

"मुसलमान. . . ?"

"जी. . . !" मैंने नजरें उठायीं और खुद को सात-आठ सरदारों के घेरे में पाया. . . औरतें भी अपने-अपने काम छोड़ कर मेरे गिर्द जमा हो गयीं. वे सब बिल्कुल चुप थे. इतने में सरदारों में से एक की गूंजती हुई आवाज बुलंद हुई, "अगर हम चाहें तो तुम यहां से जिंदा वापस नहीं जा सकतीं."

ये इस कद्र अचानक था कि एक लम्हे के लिए मेरी समझ में न आया कि ये क्या हो रहा है. मैंने चारों तरफ देखा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने घर के आंगन में खड़ी थी और ये जलावतन परदेसी जिनके घर आंगन उनसे छिन गये थे, जिनकी जवान बेटियां और बहुएं लापता थीं, इस पुराने, इज्जतदार 'आशियाने' के जख्मी और बदहाल नये मालिक थे. अचानक मेरे जेहन में एक खयाल कौंधा. हर लम्हा सारी कायनात की तारीख का निचोड़ हैं--हर लम्हा हमारे मुल्क की सारी तारीख का निचोड़ है और कौमी इतिहास के इस खौफनाक मोड़ पर पहुंचकर मैं और ये मेरे हमवतन, इस सूरत में एक-दूसरे के सामने मौजूद हैं कि हमारे दरमियान मौत और खून की अंधेरी घाटियां सनसना रही हैं. उस वक्त मुझमें न जाने कहां से हिम्मत आ गयी. मैंने सिर उठाकर बूढ़े सरदार को देखा और कहा, "अगर मुझे मारकर आपके दिलों को शांति मिल जाये तो जरूर मार डालिए." चंद लम्हों तक मुकम्मल सन्नाटा छाया रहा, जिसमें करीब खड़ा चंपा का दरख्त सरसराया—ऊपर आसमान बेहद साफ और नीला था.

वह बूढ़ा सरदार आगे बढ़ा और उसने मेरे सिर पर हाथ रख दिया. उस लम्हे में अचानक फिजां बदल गयी, "आओ ...बैठो...!" उसने नरमी से कहा. एक औरत ने फौरन पलंग पर खेस बिछाया. दूसरी लस्सी का गिलास ले आयी.

वापस लौटकर मैंने अपने फौजी अजीज से कुछ बातें साफ करने की कोशिश की.

"एक बात बताइए." मैंने उनसे पूछा, "आंखवालों की सियासत में अंधों की कोई जगह है?'

"क्या मतलब ...?"

"मतलब ये कि फौज, जबान, तहजीब, खानदानों और दिलों का बटवारा तो हो गया, लेकिन हिंदुस्तान-पाकिस्तान की गलियों में भीख मांगते अंधों, अपाहिज फकीरों और लाचारों की तकसीम किसी ने नहीं की, मगर ये कि आज हम सब अपनी बीनाई खो चुके हैं."

"तुम हमेशा बेतुकी बात करती हो."

"मुझे जरा 'आशियाने' पर उतार दीजिएगा." मैंने कहा.

"क्यों..." फौजी अजीज ने कार रोककर पूछा.

"काहे जान के पीछे पड़ी हो. नाभे के सिक्ख हमला करने वाले है. मारे जायेंगे हम सब." उनकी बीवी ने झुंझलाकर कहा.

"भाभीजान, मैं जरा चंद बेहद खूंखार सिक्खों से मुलाकात कर आऊं." मैंने जल्दी से कार से उतरकर आशियाने की तरफ भागते हुए जवाब दिया और तेजी से बाड़ फलांगकर अपने बाग में दाखिल हो गयी.

अंदर पहुंचकर मैंने उन बूढ़े सरदार को ढूंढ निकाला, जो उसी तरह पिछले बरामदे में नमाज के तख्त पर बैठे चुपचाप बाग के दरवाजों को ताक रहे थे. मैंने जल्दी में उनसे कहा.

"मुझे आप से एक काम है. ये हमारा घर अब आपका है. इसलिए आपकी इजाजत चाहिए."

"ये घर, न मेरा है, न तेरा. बेटी, ये तो रैन बसेरा है."

"मेरे एक बुजुर्ग हैं. वे पहले यहीं रहते थे." मैंने दूर शागिर्द पेशे की ओर इशारा किया... "अब वे अंधे हो गये हैं ओर भीख मांगते हैं—अगर वे इस शागिर्द पेशे के किसी कोने-खुदरे पड़े रहें... और आपके यहां से उन्हें दो वक्त की रोटी मिल जाये...!"

बूढ़े सरदार ने बड़े रूमाल से चेहरा साफ किया और कहा, "बेशक-बेशक, हमारे पास जो कुछ खाने को है, हाजिर है."

मैं फौरन अलेक्जेंड्रा पैलेस वापस भागी. फौजी अजीज उसी वक्त लौटे थे और शरणार्थियों की दूसरी खेप लाने फिर बली लॉज जा रहे थे. मैं जल्दी से कार में बैठ गयी. अब ट्रेन का वक्त करीब आ चुका था. बेली लाज से लोगों को लेने के बाद करनपुर के सामने पहुंचकर मैंने फौजी अजीज से फिर कहा कि कार रोक लें.

"अब किससे मिलना है ?" उन्होंने झुंझलाकर पूछा.

"एक बड़े आदमी से, जो कल से मेरे मुंतजिर हैं और मुझे उनको एक दूसरे बड़े आदमी के पास पहुंचाना है."

"कौन बड़ा आदमी भई—सर रघुनाथ को तो हम कल ही खुदा हाफिज कह आये. रहे नवाब साहब बहरामपुर और जैकब डेम—!" उन्होंने जोर से ब्रेक लगायी, क्योंकि गाय कार के सामने आ गयी थी. मैं दरवाजा खोलकर तीर की तरह नहर के किनारे पहुंच गयी.

लेकिन बारिश में भीगा नीला पत्थर खाली पड़ा था. कश्मीरी शाल का टुकड़ा कीचड़ में लथपथ एक तरफ को बह गया था और तामचीनी की शिकस्ता मैली रकाबी मिट्टी पर औंधी पड़ी थी. वहां कोई नहीं था. □

● अनुवाद : अशफाक अहमद

ग़ज़ल

नित्य नयी तकरार हमारी बस्ती में,
हर डाकू, सरदार हमारी बस्ती में.

एक रात में पूरा गांव शहीद हुआ,
सोती है सरकार हमारी बस्ती में.

अब कुपात्र को भी आदर देना होगा,
रहजन भी हकदार हमारी बस्ती में.

पांच वर्ष के बाद यहां फादर क्रिसमस,
लाते हैं उपहार हमारी बस्ती में.

पूछो मंदिर-मस्जिद या गुरुद्वारे से,
कब होगा अवतार हमारी बस्ती में.

सपने में बापू मिल जायें तो कहना,
ऐसी है रफ्तार हमारी बस्ती में.

■ दीप शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : सितंबर, 1915

निधन : 11 नवंबर, 1984

जिसे किसी मोक्ष की जरूरत न थी वह भी न रहा

कई-कई बार वह मौत के घेरे में गया. . . और फिर जिंदगी के दामन में लौट आया. हर चीज को देखकर हैरान हो जाना और हर दुर्घटना से परेशान हो जाना उसकी आदत का हिस्सा था. न उसकी हैरानी की कोई सीमा थी न परेशानी की. अजब आदमी था वह. अक्लमंदी की वजह से किसी औरत से मुहब्बत न करने वाला यह आदमी अच्छी तरह समझता था, कि औरत बेवकूफी की वजह से उससे मुहब्बत नहीं करती. . .और यह भी.कि वासना और प्रेम में कितना बड़ा फर्क होता है.

उसकी ख्वाहिश थी कि वह लिखे. . न पैसे के लिए, न पब्लिशर के लिए. . बस लिखने के लिए लिखे. उसकी बेबाकी कदम-कदम पर बताती थी कि राजेंद्र सिंह बेदी अपनी किस्म का एक ही आदमी है. . . सिर्फ राजेंद्र सिंह बेदी, जो छाती ठोक कर यह कह सकता है कि "मुझे किसी धर्मग्रंथ की जरूरत नहीं, क्योंकि इन बासी किताबों से अच्छी मैं खुद लिख सकता हूं. मुझे, गुरु, उस्ताद और किसी दीक्षा की तलाश नहीं है क्योंकि हर आदमी आप ही अपना गुरु हो सकता है और आप ही अपना चेला. . मुझे किसी परम सत्य, किसी मोक्ष की जरूरत नहीं. अगर भगवान इंसान को बनाने की हिमाकत करता है तो मैं इंसान होकर भगवान बनाते रहने की बेवकूफी क्यों करूं.?. . मैं एक ऐसे मुकाम पर पहुंचने की तमन्ना रखता हूं. . .तमन्ना से बेलाग रहकर—जिसे हम संतों की भाषा में 'सहज अवस्था' कहते हैं और जो सिर्फ जानने के बाद ही आती है; और—मैं नहीं जानता."

लगता यह है, बदी साहब सब कुछ जान गए थे. वे अब सहज अवस्था में ही हैं. हम लोग जो इस अवस्था के साक्षात-सत्य से अपरिचित हैं. . अब उन्हें 'दाना और दाम', 'ग्रहण', 'लाजवंती', 'दीवाला', 'सात खेल,' 'कोख जली', 'हाथ हमारे कलम हुए,' 'मुक्तिबोध', 'अपने दुख मुझे दे दो' और 'एक चादर मैली-सी' में खोजते रहेंगे.

कहानी चलती रहेगी, अपनी शक्ल को भले ही बदल दे. और हम बेदी साहब की इस बात का मतलब समझ सकेंगे—"अगर नज्मो-नस्क इंसानी जिस्म का हिस्सा है, वह गा सकता है और नाच सकता है, तो हमेशा कहानी कह सकता है. वाकआत के बयान में बढ़ा सकता है और घटा सकता है."

. . यह सच है कि कहानी कभी खत्म नहीं होती और कहानी रहेगी तो बेदी साहब को कौन भुला सकता है भला! इसी क्रम में 'सारिका' जल्द ही स्वर्गीय राजेंद्र सिंह बेदी पर विशिष्ट सामग्री देने की योजना भी बना रही है. सारिका परिवार की ओर से इस दुखद अवसर पर भावभीनी श्रद्धांजली. . . □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

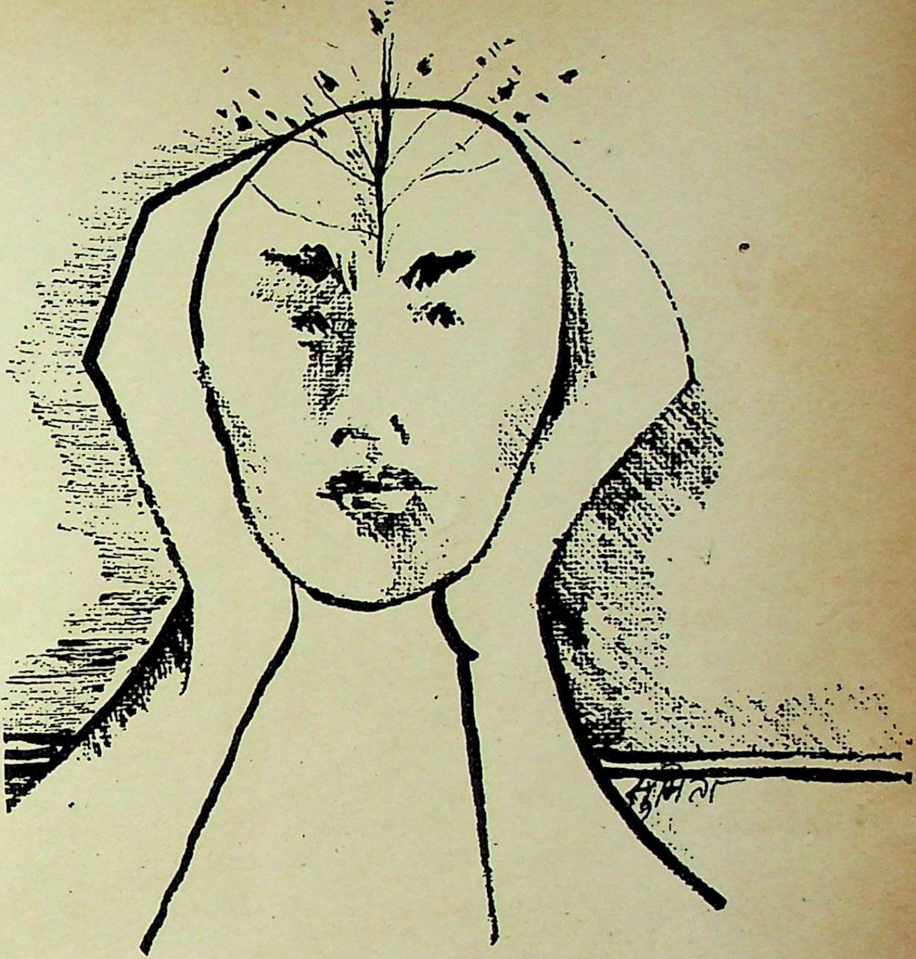

ये कहानी मेरी नहीं है

• विभु कुमार

भला चंगा आदमी भी अनायास क्यों ऐसा महसूस करने लगता है कि उसके मस्तिष्क में विचार आने ही बंद हो गए ह . . . . क्यों अकारण ही वह अजीबोगरीब हरकतें करने लगता है . . . और बैठे-ठाले उत्तेजित हो उठता है? अनगिनत लोगों की जिंदगी की सही तस्वीर खींचती मार्मिक कहानी . . .

मौसम किसी चालू छोकरी की तरह रंग बदल रहा था. और उसका मन किसी शापग्रस्त संन्यासी की तरह भटक रहा था. इस भटकन में, लेकिन एक अजीब तरह की स्थिरता थी. इस स्थिति का सही नाम क्या हो सकता है—उसे नहीं मालूम. उसने कोशिश भी नहीं की जानने की. बस वह अजीब-सा अनुभव करता. यह अजीब-सा क्या है, इसे क्या नाम दिया जा सकता है—वह नहीं जान पाया आज तक. कभी-कभी उसे लगता कि इस निठल्लेपन में उसे मजा आने लगा है. इधर उसने अपनी गतिविधियां काफी कम कर दी हैं. मित्रों को आश्चर्य होता कि उसे होता क्या जा रहा है! अब वह न तो उस तरह की बैठकबाजियों में शरीक होता और न किसी के घर जाता. दरअसल, यह सब उसे सारहीन लगने लगा था. वही घटिया किस्म की बौद्धिक बहस—जिसका उद्देश्य केवल बहस करना होता—किसी निर्णय या निष्कर्ष पर पहुंचना नहीं, और वह इस सबसे उबिया गया था.

कभी-कभी वह खुद को ही 'थर्ड परसन' मानकर पूछता—अब आप ही बताइये, आज के इस जमाने में जहां एक आंख दूसरी आंख का विश्वास नहीं करती, कोई अपनी बीवी को किसी गैर के साथ सेकेंड शो देखने भेज सकता है, वह काफी विश्वस्त मित्र ही क्यों न हो. और बड़े आत्म-प्रशंसा के भाव से वह अपने 'थर्ड परसन' को जवाब देता—मैं भेज सकता हूं, अभी ही मेरी पत्नी सेकेंड शो गयी है. थर्ड परसन पूछता—अगर कुछ हो गया तो? वह बड़े इत्मीनान और आश्वस्त भाव से जवाब देता—क्या होगा! और जो होगा, क्या वह घर में ही नहीं हो सकता? वह क्या हर वक्त पत्नी की निगरानी करता रह सकता है? पत्नी के चरित्र के प्रति वह क्यों जिम्मेदार है—वह नहीं समझ पाता. पत्नी का चरित्र, पत्नी का चरित्र है—उसका नहीं, वह स्वयं समझदार है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने चरित्र की रक्षा करना वह अच्छी तरह जानती है... यह और बात है कि वह खुद ही न चाहे, अगर ऐसा होगा तो वही क्या कर लेगा!

उसे अचानक हंसी आ गयी. कुछ दिन पहले ही उसने अखबार में पढ़ा था कि किसी यूनुस नामक व्यक्ति ने प्रधानमंत्री की बहू के चरित्र को लेकर टिप्पणी की थी, जिससे उनका कुछ इस तरह का आशय झलक रहा था कि देश के गर्त में जाने का एक मात्र कारण यही है. काश कि वे उसे कहीं मिल जाते, तो उनसे पूछता कि—भाईयो, इस देश की इतनी बहुएं किसी न किसी कारण से जलायी जा रही हैं या आत्महत्या के लिए मजबूर की जा रही हैं—इसकी तुम्हें चिंता नहीं है क्या इस साठ करोड़ के देश में केवल एक ही बहू है.

उसे लगा इस मसले पर सोचना बेकार है. पत्नियों/बहुओं के चरित्र से कहीं ज्यादा अहम् सवाल हैं, जिनके बारे में सोचा जा सकता है. उसने महसूस किया उसने बहुत बड़ी बात सोच ली है. साला हमारा देश पत्नियों के चरित्र के बारे में सोच-सोचकर ही चरित्रहीन हो गया, जिन देशों ने इसकी चिंता नहीं की—न केवल उनका अपना चरित्र है, वरन वे ही आज प्रगति कर रहे हैं. इस व्यवस्था में कहीं कुछ होने वाला नहीं है—उसने बुद्ध की तरह सोचा. बुद्ध भी अगर अपनी पत्नी के चरित्र की चिंता में लीन रहते तो बुद्ध न होते—सिद्धार्थ ही रहते. सिद्धार्थ, इस देश में हजारों, लाखों, करोड़ों हैं, बुद्ध अभी तक एक ही है. उसने महसूस किया कि अनजाने ही उसने एक विराट सत्य से साक्षात्कार कर लिया है. बुद्ध, बोधिवृक्ष और सत्य तीनों मनुष्य के अंदर ही होते हैं—

इस व्यवस्था में कहीं कुछ होने वाला नहीं—इस सत्य से साक्षात्कार होते ही उसने लिखना बंद कर दिया. लिखकर भी क्या होगा. वह खुद को ही समझाने की कोशिश करता. लिखकर इस व्यवस्था का कुछ नहीं बिगाड़ सकता—तब लिखने से क्या फायदा. वह अपने निश्कर्ष पर खुश हुआ.

पिछले दो-तीन वर्षों से उसने ऐसा महसूस करना शुरू किया है, तभी से उसने अपने अंदर एक अजीब-सा परिवर्तन महसूस करना प्रारंभ किया. उसने महसूस करना शुरू किया कि वह विचार-शून्य होता जा रहा है. जब-जब उसमें विचार-शून्यता का बोध जागता, वह अजीब तरह के तनावों से भर जाता. अपने इस अहसास को वह किसी से कहने से भी डरता कि कहीं लोग उसे पागल न कहने लगें, खुद को पागल की स्थिति में सोचने भर से ही वह आतंकित हो जाता.

उसने अपने आसपास और चारों तरफ देखा, कहीं कुछ नहीं बदला था. मच्छर उसी तरह भनभना रहे थे. बच्चे बेफिक्र सो रहे थे और पत्नी वैसी ही गैर रोमेंटिक मुद्रा में पसरी हुई नाक बजा रही थी. बाहर छत पर चांदनी भी पत्नी की तरह गैर-रोमेंटिक अंदाज में पसरी हुई नजर आई. कुल मिलाकर कहीं कोई आकर्षण नहीं था. ऐसी स्थिति में वह बड़ी आसानी से उस लड़की के बारे में सोच सकता था. जिसके प्रति उसके मन में इन दिनों तीव्र आकर्षण और आसक्ति का भाव गहराया हुआ है, पर इस वक्त उस लड़की के बारे में सोचना भी उसे जंचा नहीं, वह लड़की तो अच्छे खासे मूड और समय की मांग करती है.

इधर वह उससे कुछ नाराज भी था और नाराजी में इतना तो कर ही सकता है, कि उसके बारे में बिल्कुल न सोचे. उसे अपने आप पर गुस्सा आने लगा. इस व्यवस्था पर गुस्सा आने लगा. जिस व्यवस्था में आदमी प्रेम भी अपनी इच्छा से न कर सके—वह भी कोई व्यवस्था है! वैवाहिक संस्था की इस तानाशाही पर उसे क्रोध आया. उन पर और भी क्रोध आया, जिन्होंने ऐसी व्यवस्था की. उसकी समझ में आ गया कि लोकतांत्रिक व्यवस्था इस देश में सफल नहीं हो सकती. तानाशाही तो यहां की जड़ में हैं. उसे झटका-सा लगा. क्या अनाप-शनाप सोच रहा है. इस तरह का सोचना भी कहीं एक तरह का पागलपन तो नहीं है.

वह चौंक पड़ा. उसने सोचना शुरू किया कि अगर वह पागल हो गया तो—और इसके आगे सोचने की हिम्मत वह नहीं जुटा पाया. जब भी उसने इस ओर ध्यान दिया—उसके मन में यह कभी नहीं आया कि अगर वह पागल हो गया तो...उसके बाल-बच्चों का क्या होगा, पत्नी का क्या होगा, बावजूद इसके कि उसकी नौकरी छूट चुकी होगी. उसे बस यही सोचकर दहशत होती कि पागलपन की स्थिति में जब वह नंग-धड़ंग सड़कों पर घूमेगा तो लोग क्या सोचेंगे. कितनी शर्मनाक स्थिति होगी वह. दूसरे ही क्षण उसके मन में विचार आता कि पागल होना—न होना क्या मनुष्य के बस की बात है. बस की बात होती, तो कुछ लोग ही सही, पागल क्यों होते!

उसे मित्रों के साथ हुई पिछली सिटिंग की याद हो आयी. रमेश, वर्मा, कुमार और वह बैठे थे. ड्रिंक्स सेशन, विद डिस्कशन चल रहा था. नशा और नशे की गर्मी के साथ-साथ बौद्धिक डिस्कशन की गर्मी भी बढ़ रही थी कि उसने अपनी जिज्ञासा रखी थी, कि क्या उनके साथ भी ऐसा होता है कि वे भी कुछ न सोचें. कोई विचार ही न उठे उनके मन में, क्या किसी क्षण उन्हें ऐसा महसूस होता है.

उसने एक-एक करके सभी के चेहरों की तरफ देखा. सभी सिप लेने में व्यस्त थे, उसने दुबारा पूछा, "क्या पागलों की-सी बात करता है यार तू भी, आदमी अगर कुछ न सोचे, कोई विचार ही न आए उसके मन में तो वह आदमी कहां रहेगा!" कुछ रुककर वर्मा बोला, "अबे, आदमी तो निद्रावस्था में भी सोचता है."

"लेकिन मेरे साथ ऐसा होता है यार, तुम लोग मानो या न मानो." उसके कथन में दयनीयता व उत्तेजना का मिला-जुला भाव था, शराब की गर्मी से उत्तेजना शायद कुछ ज्यादा थी, "लग गई है साले को. आजकल बड़ी जल्दी बहकने लगा है बे तू, पहले तो कितनी-कितनी पी जाया करता था, कुछ नहीं होता था. आजकल क्या होता जा रहा है तुझे." रमेश अपना गिलास खाली करता हुआ बोला.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—लघुकथा—

रफ-कॉपी

▣ सुभाष नीरव

बाबू राम प्रकाश खाना खा चुकने के बाद, रोज की तरह आज भी अपने कमरे में बैठकर ऑफिस से लाया काम करने में जुट गए. कुछ ही देर बाद, उनका दस-वर्षीय बेटा रमेश कमरे में दाखिल हुआ और समीप आकर बोला, "पापा, आप मेरे रफ-काम के लिए कॉपी लाये?"

बाबू राम प्रकाश पलभर अपनी याद्दाश्त को कोसते रहे. पिछले तीन दिनों से वह भूलते आ रहे थे. आज फिर उन्होंने अपने बेटे को समझाने की कोशिश की, "ओह बेटा, हम आज फिर भूल गए. देखो न, कितना काम रहता है! याद ही नहीं रहता, सच."

"हम कुछ नहीं जानते. आप तीन दिन से टाले जा रहे हैं. हमें कॉपी आज ही चाहिए." रमेश जिद्द करने लगा.

"बेटा, रात को इस वक्त दुकानें भी बंद हो गयी होंगी. कल हम जरूर ला देंगे."

पर, बेटा जिद्द पर अड़ा रहा. माना ही नहीं. बाबू राम प्रकाश सोच में पड़ गए. एकाएक, उनकी नजर मेज पर रखे पतले से उस नये रजिस्टर पर पड़ी जिसे वह आज ही दफ्तर से नयी एंट्री करने के लिए लाये थे, "लो बेटा, तुम इस पर अपना रफ-काम कर लिया करो." "पापा, इसमें तो खाने बने हुए हैं."

"तुझे रफ-काम करने से मतलब है या खानों से." बाबू राम प्रकाश एकाएक गुस्सा हो उठे. रमेश रजिस्टर लिए सहमा हुआ-सा कमरे से बाहर निकल गया.

'कल फिर स्टेशनरी-क्लर्क को नया रजिस्टर लेने के लिए चाय पिला देंगे. चाय कॉपी से सस्ती पड़ती है,' बाबू राम प्रकाश अब यही सोचकर खुश थे. □

"तुम लोग तो कभी बातों को सीरियसली लेना जानते ही नहीं हो." उसने खीझ कर कहा और बची हुई शराब एक सांस में गटक गया.

"अबे तुझसे हमें बड़ी उम्मीदें हैं, देश को भी हैं, और तू है कि ऐसी घटिया बात कह रहा है, लानत है तुझ पर." कुमार चिढ़कर बोला. "साले तुझ पर इतना खर्च इसलिए नहीं करते हैं कि तू इस तरह की वाहियात बात सोचे." रमेश का शराब में डूबा स्वर बोला. "साले तूझे क्रांतिकारी भूमिका निभानी है—क्रांतिकारी." वर्मा ने गिलासों को भरते हुए कहा. अब तक वह उदास हो चुका था. गुस्सा भी आ रहा था कि कहां इन मूर्खों के चक्कर में फंस गया. साले समझते हैं कि इनकी दारू के लिए लिखता हूं.

"गिलास उठा बे, बेकार की बातें मत सोच—और इधर नया क्या लिखा तूने?" कुमार ने गिलास मुंह में लगाते हुए पूछा.

सभी पर शराब का असर दिख रहा था, धीरे-धीरे पीने के कारण वह चारों में सबसे ज्यादा सेंस में था.

अबे लिखकर क्या लेगा, किस लेखक के लेखन ने क्रांति कर दी—साले, इस अवस्था में क्रांति केवल फिल्म-लेखक कर सकता है, और अगर क्रांति इतनी घटिया और फूहड़ होती है, तो मैं नहीं चाहता इस देश में कभी क्रांति हो."

"अबे इतना तो सोच रहा है तू, फिर कैसे कहता है कि कुछ सोचता ही नहीं. विचार-शून्यता की स्थिति रहती है."

"मैं कब कहता हूं कि हमेशा होता है ऐसा, लेकिन ऐसे क्षण आते हैं. . . ."

"तू पागल है बे." वर्मा बोला और बाकी हंसने लगे.

इतना सुनना था कि उसने एक झटके में गिलास पटक दिया था, गिलास के टुकड़े हजारों की शक्ल में यहां-वहां बिखर गये थे, तीनों मित्र सकते में आ गए थे. वे सम्हल पाते कि वर्मा की गर्दन पर सवार-सा होता हुआ वह बोला, "हां-हां मैं पागल हूं. साले तुम सब भी पागल हो. फर्क इतना है कि मैं ईमानदारी से अपनी बातें कह देता हूं और तुम लोग बेईमानी से भी नहीं कह पाते."

उसी स्थिति में वह वहां से चला आया था. जाने कितने दिनों तक उनके बीच अबोलेपन की स्थिति रही थी. तब से लेकर अब तक वह निरंतर सोचता रहा है, कि ऐसा उसके साथ क्या होता है, क्यों उसे लगता है कि उसका दिमाग विचारों से शून्य हो गया है.

यह दौर अभी कुछ ही वर्षों से उसके जीवन में आया है. उसके पहले ऐसी कोई बात नहीं थी. वह एक संतुलित और नार्मल आदमी था. कुछ करने की उसमें अदम्य इच्छा थी. इसी इच्छा के तहत उसने लीक से हटकर एक विधर्मी लड़की से विवाह किया और बड़ा खुश था कि उसने अपने इस कार्य से व्यवस्था की चूलें हिला दी हैं, कि उसके ढहने में अब देर नहीं है, कि समाज को उसने एक नयी दिशा और दृष्टि दी है. सोच-सोचकर प्रसन्नता होती कि उसके नक्शे-कदम पर चलकर समाज एक नया रूप, एक नया आकार ग्रहण करेगा.

कुछ ही दिनों बाद उसे पता चलने लगा कि हकीकत कुछ और है, जैसे-जैसे समय गुजरता गया उसका यह भ्रम टूटता गया, जिस कदम को उसने समाज की चूलें हिलाने वाला समझा था, उस कदम ने उसके अपने परिवार की चूलें हिला दी हैं. परिवार को विघटन की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है.

उसे अप्रत्यक्ष रूप से अहसास दिलाया जाने लगा कि उसकी बहन की शादी उसके इसी (तथाकथित) क्रांतिकारी कदम के कारण नहीं हो पा रही है. यह अहसास धीरे-धीरे अपराध-बोध के रूप में उसके समूचे व्यक्तित्व पर छाता गया, अभी भी इसकी टीस उसके सीने में उठती है.

उसे अपनी पत्नी के रवैये में भी परिवर्तन नजर आ रहा था, जब वह प्रेम की पींगें बढ़ा रहा था उसके साथ, तब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे बार-बार कहता कि उसे अपनी बहू के रूप में पाकर उसके बूढ़े मां-बाप धन्य हो जायेंगे. उनके जीवन की एक मात्र इच्छा पूर्ण हो जाएगी.

दूसरी ओर अपने मां-बाप से वह कहा करता कि यह लड़की आप लोगों की अच्छी तरह सेवा करेगी. लेकिन उसका यह क्रांतिकारी सपना कब और कैसे और किस चट्टान से टकराकर चूर हो गया, उसे पता ही नहीं चला और जब तक पता चला, तब तक पत्नी के लिए उसके सास-सुसर घृणा के पात्र बन चुके थे, जिनके साथ एक पल भी गुजारना उसके लिए हराम था. वह जितनी देर घर से बाहर रहता, आशंकित रहता, कि घर पहुंचने पर कौन-सा भयावह दृश्य देखने को मिले. अब तक पत्नी दो बार आत्महत्या की कोशिश कर चुकी थी. उसे अपने ऊपर आश्चर्य होता कि इस लड़की से प्रेम किया और धीरे-धीरे उसकी समझ में आया कि वह प्रेम नहीं था, क्रांति करने का एक भावुक उन्माद था.

उसे याद है कि युवावस्था के प्रारंभिक दौर में सभा-गोष्ठियों आदि में खरी-खरी बातें बोलना प्रिय शगल था. दोस्त-अहबाब उसकी बोल्डनेस की तारीफ करते नहीं अघाते थे. बोलने का मौका आने पर सबसे पहले उसे ही अवसर देते. यह तो उसने बहुत बाद में महसूस किया कि इस तरह उसने अपना इस्तेमाल ही नहीं होने दिया है बल्कि अपनी कथित विद्रोही भंगिमा से अपने बहुत से मित्रों को भी दुश्मनों में तब्दील कर लिया है.

उसे अच्छी तरह याद है कि वह और उसका एक मित्र, एक दोस्त के संस्थान में पार्ट टाइम जॉब करने लगे थे, उस संस्थान के मालिक और उसके पुत्र की छद्म-प्रगतिशीलता के पीछे पूंजीवादी चेहरे और शोषण के दुष्चक्र को सारा शहर जानता था, उसके मित्र ने उससे कहा कि इन लोगों के दोमुंहापन को उजागर करना चाहिए. इन लोगों के शोषक और उत्पीड़क रूप का पर्दाफाश होना चाहिए.

उसे भी लगा कि ऐसा करना निहायत जरूरी है, उसके कार्य से समाज का और इस संस्थान में पिस रहे कर्मचारियों का बहुत भला होगा. उसने कुछ ऐसे काम किए कि मालिक-पुत्र बौखला गया. लेकिन उसका साथ किसी ने नहीं दिया.

और उसने बड़े क्रांतिकारी अंदाज में स्तीफा दे दिया. उसकी शहादत का परिणाम क्या निकला, न उस संस्थान के रवैये में फर्क आया और न ही शोषण बंद हुआ, बल्कि उसके कई ऐसे प्रगतिशील और बुद्धिजीवी मित्रों ने, जो इस संस्थान के मालिकों की तीखी आलोचना किया करते थे, उस संस्थान और मालिक से अपने संबंध मधुर कर लिये थे.

उसने कई बार निश्चय किया कि अब वह इन झंझटों में नहीं पड़ेगा. अपने इस निर्णय से वह बहुत खुश था. लेकिन कभी-कभी उसे अपना यह निर्णय बकवास लगता. उसे लगता इस तरह वह अपने को ही सजा दे रहा है, बिना किसी अपराध के वह अपने को अपराधी बना रहा है. उसे तो ज्यादा से ज्यादा मुखालफत करनी चाहिए इस व्यवस्था की, चूंकि वह ऐसा नहीं कर रहा था—इसलिए कभी-कभी उसे अपने नाकारा होने का अहसास होने लगता. उसका दिमाग काम करना बंद कर देता.

"क्या सोच रहे हो?" पत्नी उससे पूछती.

"कुछ नहीं." वह उत्तर देता.

"क्या सोच रहे हो?" दोस्त-यार पूछते.

"कुछ नहीं." वह उत्तर देता.

घर परिवार के सदस्य, दोस्त-अहबाब और कालेज के साथी लेक्चरर उसकी इस हालत से परिचित होने लगे थे. जब वह क्लास में किसी विद्यार्थी को या पूरी क्लास को डांटता तो किसी को कारण ही समझ में न आता, बाद में सोचने पर वह भी न समझ पाता कि ऐसा उसने क्यों किया था!

उसने महसूस किया था कि पढ़ाते-पढ़ाते अचानक उसके मष्तिस्क में विचार आना बंद हो जाते, जैसे खूब स्पीड से जाती गाड़ी में किसी ने अचानक ब्रेक लगा दिया हो. वह हड़बड़ा उठता और क्लास छोड़ देता. क्लास के औचित्य को सिद्ध करने के लिए वह अकारण ही किसी लड़के को डांटता. उसने बहुतों से इसका कारण जानने-पूछने की कोशिश की, जिसे देखो वही हंसकर टाल जाता, जैसे कोई बात ही न हो.

वह हीन भावना से ग्रसित होने लगा है, उसने महसूस किया. उसे लगता कि कहीं वह सचमुच ही पागल तो होने नहीं जा रहा है. जैसे ही यह अहसास उसके दिमाग में आता वह बौखला उठता. बच्चों को डांटने-मारने लगता, पत्नी से बिला वजह झगड़ने लगता. लोग भी उससे कतराने लगे हैं—वह महसूस करता—लेकिन वह स्वयं जिस मानसिक यातना से गुजर रहा है, उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था. इधर उसके निर्णय और फैसले गलत होने लगे थे, जाने क्यों उसे लगने लगा था कि वह पागल ही हो जाये तो ज्यादा अच्छा है. रोज-रोज के तनावों से, घर की रोजाना की चख-चख, पत्नी के तानों और बच्चों की मांगों से छुटकारा तो मिलेगा. उसका सिर चकराने लगा. उसने सामने की ओर देखा. सोयी हुई पत्नी का शरीर बेहयाई की सीमा लांघ चुका था. उसने वितृष्णा से आंखें हटा लीं और घृणा से थूक दिया.

बच्चे अपनी मां की बेहयाई से अनजान बेफिक्र सोये थे, उसे याद आया कि छोटा बच्चा कई बार पलंग पर पेशाब कर देता है, उसे पेशाब करा देना चाहिए, पर उसका मन उठने का नहीं हुआ.

लोग तो देश को पलंग मानकर उस पर पेशाब कर रहे हैं. वह क्या कर ले रहा है उनका! मन अपनी असमर्थता के प्रति खीझ से भर उठा. उसने छत पर नजर डाली, चांदनी भी अपनी बेहयाई पर पूरी तरह उतर आयी थी. वह उठा. छत पर जाकर उसने पेशाब की. उसे तनाव से मुक्ति का अहसास हुआ. वह अपने बिस्तर पर आकर लेट गया. उसकी इच्छा हुई कि पत्नी को जगाए और बताए कि वह पागल नहीं है. यह विचार मन में आते ही वह उत्तेजना से भर उठा और पत्नी को जगाने के लिए जोर-जोर से चिल्लाने लगा. □

● हस्ताक्षर, 'ताव्यापारा,' रायपुर, (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ते की मौत

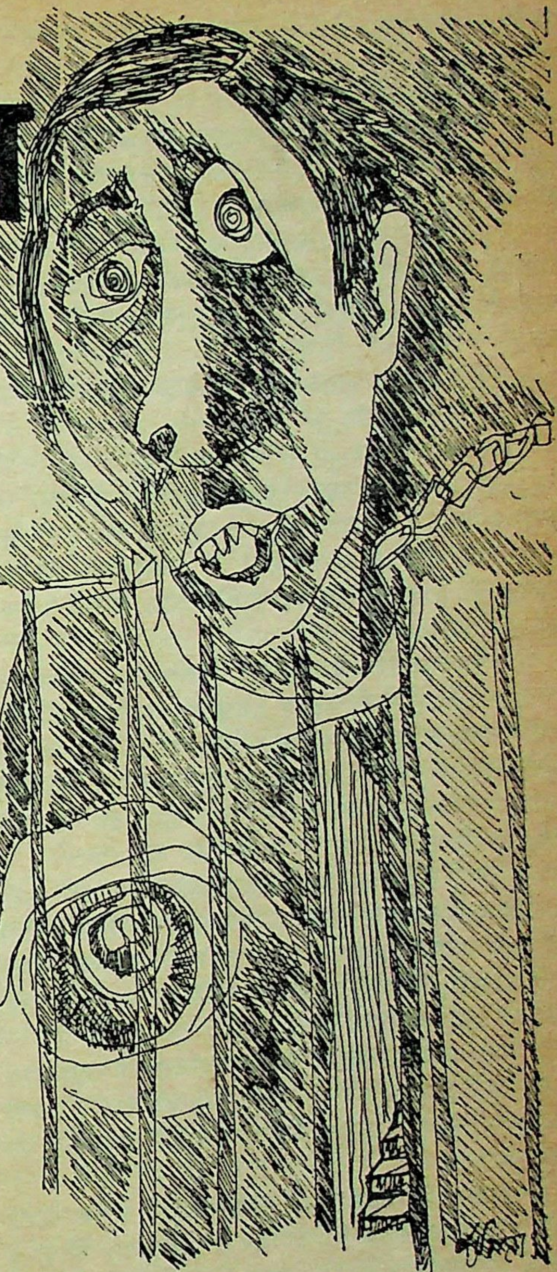

• रमेश गुप्त

पूरे एक हफ्ते तक तेज बुखार ने उसे एकदम ऐसे ही जकड़े रखा था जैसे उसकी लंबी, लोहे की संड़ासी में फंसा कोई आवारा, गंदा, बाजारू कुत्ता.

शुक्रवार की सुबह ठीक सवा नौ बजे वह दफ्तर पहुंचा. पीला चेहरा नींबू की तरह निचुड़ी ताकत. दस कदम चलते ही हांफने लगता वह. सुपरवाइजर साहब के कमरे के बाहर खड़े जगतार को देख उसकी आंखें सिकुड़ गयीं. कामचोर, चुगलखोर, रिश्वतखोर और न जाने कौन-कौन से गुण हैं इस सहायक में.

"उस्ताद छुट्टियां मत लिया करो. पगार कट जाती है !" जगतार ने बम विस्फोट कर दिया.

उसे पता था, पिछले दस-बारह साल से वह दिहाड़ी पर काम करने वाले की नियति को भोग रहा है. दिन-दर-दिन जीना. रेगुलर कर्मचारियों जैसी कोई सुविधाएं नहीं. न छुट्टियां, न प्रोविडेंड फंड, न पेंशन. आखिर उसमें और चोपड़ा में कौन-सा फर्क है ? चोपड़ा सारे दिन दफ्तर से गायब रहता है. फिर भी उसे पूरी पगार मिलती है. पर एक वह है ! ऊंह, बेड़ा गर्क हो इस जगतार का. जिस कड़वे एहसास को वह भुलाए रखना चाहता था, उसी की याद इसने दिला दी है.

वह कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं पाया. उसकी सांस धौंकनी की तरह चलने लगी थी. साथ ही जगतार ने उसकी तरफ एक बीड़ी बढ़ा दी थी.

तभी पप्पू यार का सिरचढ़ा, नकचढ़ा चपरासी ननकू आ गया. उसे हिकारत से देखता हुआ बोला, "साहब याद कर रहे हैं."

ननकू की आवाज में कड़क थी. चाल में तेजी. शरीर शान से अकड़ा हुआ. उसने बीड़ी जेब में रख ली और ट्रक के नीचे आये टांग टूटे कुत्ते की तरह उसके पीछे घिसटता हुआ चल पड़ा.

ननकू ने बंद दरवाजे पर दस्तक दी और उसे खोल दिया. वह कमरे में घुसा. आज कमरा जरूरत से ज्यादा बर्फ हो रहा था. एक कंपकंपाने वाली ठंडी सिहरन उसकी रीढ़ में रेंग गयी. विशाल, रोबीली मेज के पार बैठे अपने पप्पू को देख वह आश्वस्त हो गया.

"भरोसे, आजकल बड़ी शिकायतें आ रही हैं. क्या

हर कोई अपनी ही मौत मरता है. आदमी आदमी की और कुत्ता कुत्ते की—पर वे कौन से हालात हैं और वे कौन से लोग हैं जिनकी वजह से आदमी भी कुत्ते की मौत मरने के लिए बाध्य हो जाता है? प्रस्तुत है आदमी को पशु के स्तर पर ले जाने वाले षड्यंत्रों का लेखा-जोखा—

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राउंड पर नहीं जा रहे हो?" यादव ने अफसराना लहजे में पूछा.

भरोसे ने गर्दन घुमाकर, कमरे के द्वार पर खड़े शनि देवता को देखा तो वह 'सर' को पप्पू यार कहने का साहस नहीं जुटा पाया. वह मरियल-सी आवाज में बोला, "का कहूं, जा बुखार ने हुलिया खराब कर दई है."

"जवाहर नगर के एफ ब्लाक में मंत्री के प्राईवेट सेक्रेटरी रहते हैं. उनकी कंपलेंट आयी है. आवारा कुत्तों ने उनकी नाक में दम कर रखा है." कहते हुए यादव ने एक कागज उसकी तरफ उछाल दिया.

उसका कलेजा कसक गया. यार ने एक बार भी तबीयत के बारे में नहीं पूछा.

"फौरन वहां जाओ. डोंट वेस्ट टाइम."

यादव का निर्णायक स्वर सुन वह कमरे के बाहर आ गया. ननकू उसे हेय दृष्टि से देख रहा था. गलियारा पार करके वह स्टोर के पास पहुंचा तो उसने देखा, जगतार कुत्ता गाड़ी लिये नीम के पेड़ के नीचे खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था.

इतनी कमजोरी में पांच-छह किलोमीटर दूर जवाहर नगर तक पैदल मार्च. जाना ही होगा, कोई उपाय नहीं. पिछले जाड़ों में उसके जोड़ों में गठिया का दर्द उठा था. तब उसने पप्पू से अपनी असमर्थता और अक्षमता का सिर्फ इशारा भर किया था तो वह भड़ककर बोला था, "तो क्या कुत्ते पकड़ने स्टाफ कार में जाओगे?"

शनिग्रह की तरह यह साला ननकू उसके पीछे लगा रहता है. इसी वजह से 'पप्पू यार' अपनी अफसरी का मुखौटा नहीं उतार पाता. इतनी सख्त बात का भी उसने बुरा नहीं माना था. अरे, जिसने दो जून दाल रोटी का प्रबंध किया हो, क्या उसे इतनी-सी बात कहने का भी हक नहीं होगा?

"चलें, उस्ताद." कहता हुआ जगतार कुत्ता गाड़ी खींच ले चला. साइकिल रिक्शे से जुड़ा, लोहे की जाली से बना एक डिब्बा, उसमें आठ-दस आवारा कुत्तों को बंद किया जा सकता था.

वह जगतार के पीछे हो लिया. अगस्त महीने की चमकीली धूप और दमघोंटू उमस. गधे के सिर से गायब सींग की तरह बरसात का कुछ पता नहीं था. हांफते-कांपते, डगमगाते हुए. आज पहली बार भरोसे के कलेजे में एक गर्म कील ठुंकी थीं. अंदर से कोई पूछ रहा था, "उस ठंडे कमरे में, गुदगुदी, घूमने वाली कुर्सी पर पप्पू है, पर वह क्यों नहीं है?"

दोनों एक ही जगह के रहनेवाले, साथ साथ पढ़े खेले, खाये-पिये. वह इस मंद बुद्धि पप्पू को संस्कृत और गणित पढ़ाया करता था. बी. ए. में उसकी फर्स्ट डिवीजन और पप्पू का कंपार्टमेंट आया था.

पढ़ाई के बाद पप्पू तो पहले ही प्रयास में नौकरी पा गया अपने कोटे में. पर वह? न जाने कितने कंपटीशन में वह बैठा, कितने इंटरव्यू दिये, पर सब बेकार. ओवर एज होने के बाद भी उसने हिम्मत नहीं हारी.

सुदामा बन वह दिल्ली आया, कृष्ण बने अपने पप्पू यार के पास. शानदार कोठी, रोबदार दफ्तर का कमरा, चपरासी और पी. ए.. खूब अमला चारों तरफ. बड़ा ताकतवर हो चुका था उसका यार. दोस्ती का फर्ज निभाया उसने. निगम में 'डेली वेजेज' पर लगवा दिया. पांच रुपये तीस पैसे से शुरू हुई उसकी दिहाड़ी की जिंदगी!

उसे निगम के दस्ते के साथ लगाया गया था. दिन भर वह अपने साथियों के साथ शहर में घूमता और पटरी और फेरीवालों की धर-पकड़ में सक्रिय भाग लेता. गरीबों के दयनीय चेहरे उसे पिघला देते. सब्जी, फलों और खाद्य पदार्थों की लूट और बरबादी उससे देखी नहीं जाती थी. एक दिन उसने अपने सुपरवाइजर से पूछा था, "सर, आप लोग इन गरीबों को छोटा-मोटा धंधा करके रोजी रोटी क्यों नहीं कमाने देते?"

"धत्तेरे पोंगा पंडित की!" कहकर सुपरवाइजर ने उसे एक मोटी-सी गाली पंजाबी में दी और एक कोने में थूक दिया था.

जल्दी ही उसे छापामार दस्ते की अंदरूनी कार्य प्रणाली का भी पता चल गया. पहली तारीख को उसे दफ्तर से तनख्वाह मिली एक सौ दस रुपए. सुपरवाइजर ने दिये दो सौ पंद्रह. तब उसे पता चला गरीबों के खून चूसने वाले खटमलों की असलियत का. उसके संस्कारों ने विद्रोह कर दिया, उसने वे रुपये लेने से इनकार कर दिया.

उसने सपने में भी इस व्यतिक्रम की कल्पना नहीं की थी—ईमानदारी को सजा और बेईमानी को पुरस्कार. दैनिक मजदूर का इतना दुःसाहस! अगले दिन उसे भ्रष्टाचार के आरोप में सेवामुक्त कर दिया गया.

अपील करने के लिए उसके पास अपना ही एकमात्र सर्वोच्च न्यायालय था. वह उसके पास गया. तब तक पप्पू को सब कुछ पता चल गया था. सौभाग्यवश उस समय ननकू नामक शनि ग्रह अस्ताचल को जा चुका था.

"भूखे मरेंगे, पर साले ईमानदारी की लाश को कंधे पर ढोये फिरेंगे." उसे कुर्सी पर बैठा, पप्पू ने तत्काल फायरिंग शुरू कर दी, "साले, आज संतरी से लेकर मंत्री तक, पटरी पर बैठनेवाले काला से लेकर करोड़ों में खेलनेवाले लाला तक सब चोर हैं... खूब माल चीर रहे हैं, फिर तू किसलिए यह ईमानदारी का ढोंग. . . . साला, अकेला चना. . . . . "

कई बार वह गांव में बर्फ पड़ी, फालसे मिली भांग पी लेता था. तब उसकी आंखें खुल जाती थीं और अंदर एक ठंडी, मादक-सी रोशनी बिखर जाती थी. ऐसा ही उसे तब लगा. वह सिर्फ मिमिआया. बचाव में और वह कुछ नहीं कर सका.

काफी देर तक आंखें मूंद, विचारमग्न रह, दोनों हाथों की उंगलियों को एक दूसरे में फंसाकर उन्हें तोड़ते हुए, गुदगुदी कुर्सी पर डोलते हुए, यादव अनायास दीवाली पर छोड़े जाने वाले आतिशबाजी के अनार की तरह फूट पड़ा, "लेक ऑफ अपॉर्चुनिटी इज मोरेलिटी . . . अवसर का अभाव नैतिकता . . . ठीक है. तुझे ऐसी जगह लगवा देता हूं, जहां न बांस होगा, न बांसुरी बजेगी."

"कहां?"

"याद है बचपन की वह घटना, मुझे गांव के आवारा कुत्तों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस्सा मुल्ला नसरुद्दीन का

कीमती खयाल

एक बार मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी बेगम से हलवा बनाने को कहा. बेचारी ने फौरन आदेश का पालन किया और काफी मात्रा में हलवा बनाकर मुल्ला के सामने पेश किया. मुल्ला ने भरपेट खाया और कुछ थोड़ा-सा बर्त्तन में छोड़कर दोस्तों से गपशप के लिए बाहर निकल गये और रात को लौटकर आराम से सोने के लिए बिस्तर में जा घुसे.

लेकिन आधी रात के करीब अचानक उनकी आंख खुल गयी. फौरन बेगम को जगाकर बोले, "बेगम, एक बड़ा कीमती खयाल दिमाग में आया है!"

"कौन-सा खयाल?"

"पहले तुम दिन का बचा हलवा ले आओ."

बेगम उठी और हलवा ले आयी. मुल्ला ने सारा झटपट चट कर डाला. बेगम बोली, "अब बताओ, वह अपना कीमती खयाल?"

"यही कि दिन का बनाया हलवा खत्म किये बिना सोना नहीं चाहिए!" □

से बड़ा डर लगता था. पर तू . . . . एकदम हेकड़ राह चलते कुत्ते को ठोकर मार देता था. एक दिन तूने गली के सबसे मोटे और बदमाश कुत्ते को पूंछ से पकड़, बिजली की-सी गति से उठाया और हवा में घुमा कर ऐसा फेंका कि . . ." और पप्पू खिलखिलाकर हंस पड़ा था. वह भी बेमन से उस हंसी में शामिल हो गया था.

"लो उस्तादजी, जवाहर नगर आ गया."

जगतार की आवाज सुन वह चौंका. दफ्तर से तो वे जवाहर नगर के लिए चले थे, पर वह कहां चला गया था. चलो अच्छा हुआ. यादों की मुलायम उंगलियां थामे बुखार के आक्रमण से जर्जर काया को घसीटता हुआ वह मंजिल तक पहुंच ही गया था. सफर खत्म होने की घुटन भरी खुजली अंदर ही अंदर करवटें लेने लगी थी.

खुजलीग्रस्त कुत्ते की तरह वह बुरी तरह हांफ गया था. पसीने से तर बतर शरीर प्यास के मारे चटकता गला. इस शानदार, पॉश लोकेलिटी में ऊंची, बड़ी अट्टालिकाएं थीं. साफ-सुथरी-चौड़ी सड़कें थीं, किंतु कहीं प्याऊ नहीं थी.

वह एक कोठी में घुस गया. बाहर गेट पर कुत्तों से सावधान का बोर्ड लगा था, पर शायद अंदर कुत्ता नहीं था. होता तो एक अजनबी के कोठी के अंदर पांव रखते ही अवश्य भौंकता जैसे ही वह लॉन पार कर पोर्टिको में पहुंचा कुत्ता तो नहीं, एक इंसान जरूर भौंका, "ऐ, कौन है? इधर अंदर कैसे आया?"

उसने मुख्य द्वार खोल, बाहर आते हुए नौकर टाइप इस व्यक्ति की आग्नेय दृष्टि और भौंक की चिंता न करते हुए, मुलायम स्वर में कहा, "बड़ी जोर की प्यास लगी है."

"बाप की कोठी समझकर साले अंदर बढ़ आते हैं. आंख बची कि माल पर . . . भाग वे उठाईगीरे, वरना . . ."

वह बाहर आ गया—निराश और अपमानित-सा. उसने लोहे के फाटक पर लगा 'कुत्तों से सावधान' का बोर्ड फिर पढ़ा. उसकी सार्थकता ने उसे गुदगुदा दिया.

बुश्शर्ट की बांह से माथे से चुचियाता पसीना पोंछ वह सोचने लगा—बुखार के बाद पीने को पानी तक तो मिलता नहीं और डाक्टर कहे हैं— दूध और मौसमी का रस पियो.

एक विद्रूप-सी मुस्कान उभरी उसके होंठों पर. गांव वाले कैसे मूर्ख हैं! प्याऊ लगाते हैं. प्यासे को पानी पिलाना पुण्य का काम समझते हैं.

वह बच्चों के पार्क के सिरे पर लगे जामुन के पेड़ की तरफ बढ़ गया. जगतार पेड़ के नीचे बैठा बीड़ी को दो उंगलियों में फंसा हुक्के की तरह पी रहा था.

"कोई आवारा कुत्ता नजर आया?" भरोसे ने जगतार से पूछा.

"नहीं उस्ताद."

वह लोहे की संडासी ले साइड लेन में घुस गया. उमस के मारे सारा शरीर पसीने से नहा गया था. तेज धूप में भटकते हुए उसे महसूस हुआ जैसे ये साले आवारा, गंदे, बीमार और कुपोषण के शिकार बाजारू कुत्ते इंसानों से कहीं ज्यादा चतुर और चौकस हैं. सालों की इस दस्ते के आगमन की सूंघ लग गयी थी और वे गंजे के सिर के बालों की तरह गायब हो गये थे.

तभी उसे एक बादामी रंग की एक पांव टूटी कुतिया दिखाई दी. वह उसे देख तीन पांवों पर, लंगड़ाती, कूं-कूं करती भागी, पर बुखार की कमजोरी के बावजूद उसने गजब की फुर्ती दिखायी. बायें कटकर उसने एक झपट्टे में कुतिया की गर्दन संडासी में फंसा ली. इस सफलता ने उसे खुश कर दिया. वह उसे घसीटकर कुत्तागाड़ी की तरफ ले चला.

कूंकू करके कमबख्त ने सारा आसमान सिर पर उठा लिया. वह उसे घसीटता हुआ, गौर से देख रहा था. क्या यह उसकी खुद की एकमात्र बेटी कमली की गर्दन नहीं? कई महीनों पहले वह उसे अस्पताल में भर्ती करा आया था. गांव के कई दोस्तों ने पिछली होली पर कमली के डाक्टरी इलाज की सलाह दी थी. वह तो यही सोचता था कि बचपन में कमली को कोई 'ऊपर पराए' का चक्कर लग गया है, पर अस्पताल के डाक्टरों ने उसे पोलियो की बीमारी बतायी थी.

सुंदर, भरा गठा, गोल शरीर. पर लंगड़ी. चैक-अप के लिए वह कमली को अस्पताल छोड़ आया था. अगले दिन वह वहां गया तो कमली को इस लंगड़ी कुतिया की तरह आर्त्तनाद करते पाया.

"इसका कोई इलाज नहीं," कहकर डाक्टरों ने उसकी छुट्टी कर दी, पर उसी रात कमली हमेशा के लिए इस दुनिया से छुट्टी कर गयी. . . रात सवा ग्यारह बजे वाली पठानकोट ऐक्सप्रेस के सामने लेट गयी. मिंटों ब्रिज के नीचे वाली झुग्गी से निकलकर यह काम करना कोई मुश्किल बात थी?

कमली की क्षत-विक्षत लाश देख उसे मुक्ति का एहसास हुआ था. अच्छा हुआ, कमली चली गयी. खूबसूरत तिस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरीब और शारीरिक रूप से अक्षम. अभी तो डाक्टरों ने ही अस्पताल में सामूहिक बलात्कार किया था. बाद में तो सार्वजनिक उपभोग की वस्तु उसे बन ही जाना था.

कुतिया को घसीटकर कुत्ता गाड़ी तक लाते-लाते वह बेदम हो गया. जगतार वहां नहीं था. उसे गुस्सा आया. अकेले वह उसे उठाकर कैसे कुत्तागाड़ी में बंद कर सकता है?

कुतिया ने रो-रोकर कोहराम मचा रखा था. वह जगतार के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा. तभी अचानक उसे अपनी घरवाली पर क्रोध आने लगा. लड़की गयी, सो गयी, इस राधा ने और प्रान पी रखे हैं. साल भर से बराबर दवा चल रही है पर बुखार खांसी ने पिंड नहीं छोड़ा.

नये बाजार में ठेलागाड़ी पर माल ढोने वाले, उसके पड़ोस की झुग्गी में रहने वाले रामखिलावन ने कहा था; "पंडिज्जी! अस्पताल की दवाएं नकली हैं. इनसे भौजाई ठीक नहीं होगी. किसी परायवेट डाक्टर को दिखाओ."

सात रुपये तीस पैसे की दिहाड़ी. नंगी क्या पहनकर नहाये, क्या निचोड़े? सारी कमाई दवाई पर खर्च कर दे तो फिर पेट के लिए क्या बचेगा? मरे तो मर जा. जीकर भी कौन-सा राज कर रही है.

लंगड़ी शिथिल पड़ गयी. उसने भौंकना भी बंद कर दिया. एक सीमा तक भौंका जा सकता है. उसके बाद समझौता कर लेना पड़ता है. समझौता किया हुआ प्राणी हल्का पड़ जाता है. उसने अपनी पूरी शक्ति लगाकर संडासी में फंसी कुतिया को ऊपर उठाया और जालीदार दरवाजे के अंदर धकेल दिया. अंदर ढेले जाते समय वह एक बार फिर भौंकी और रोयी थी, पर जालीदार कैद में फंसने के कुछ क्षण बाद ही वह निराश और हताश-सी एक कोने में खड़ी, अश्रुपूरित नयनों से टुकुर-टुकुर बाहर देखती रह गयी.

तभी जगतार वापस आ गया. शायद वह पानी पीकर आ रहा था? पर उसका गला तड़का जा रहा था. अंदर की सारी नमी सूख गयी थी. माथा तपने और आंखें जलने लगी थीं.

"जगतार, मैं तो पकड़ लाया एक. अब एक तू पकड़." कहकर वह जामुन के पेड़ के नीचे बैठ गया.

उस्तादजी! बिना संडासी के मैंने साला एक पकड़ा था, पर बांह में मुंह मारकर भाग गया मुंहफिरा!"

जगतार की बात सुन वह हंस पड़ा. बिलकुल ऐसा ही हुआ था उसके साथ. शायद चार महीने पहले हुआ था. कूचा पातीराम में उसने खुजलीग्रस्त एक बेहद गंदा मरियल-सा कुत्ता फंसाया था. जैसे ही उसने उसे उठाया, कंबख्त बड़के की तरह उसके पांव में दो दांत गड़ाकर भाग गया. वह अस्पताल गया था, पर मजे की बात कि वहां इंजेक्शन खत्म हो गये थे. कई चक्कर लगाये. इंजेक्शन का स्टॉक नहीं आया. फिर वह अस्पताल जाना ही भूल गया.

अचानक उसकी आंखों में आंसू आ गये. उसे बड़के की याद आ गयी. वह अपने को धिक्कारने लगा. खोटे सिक्के को भी सहेज कर रखा जाता है. कौन फेंक देता है?

एक रात वह बड़ी देर से लौटा था. जैसे ही वह झुग्गी में घुसा, उसने उसका गिरहवान थाम लिया और पूछा, "कहां था?"

"क्यों? क्या बात है?"

"अवारागर्दी और गुंडागर्दी से अच्छा है, कोई काम करो."

"क्या करूं?"

"बहुत कुछ कर सकते हो."

"मैं क्या कर सकता हूं?"

"और कुछ नहीं, जहर खा तो सकते हो."

बड़के ने खूंख्वार आंखों से उसको घूरा था. फिर ढेर सारा थूक उगलकर वह झुग्गी से निकल गया. राधा उससे चिपटकर विलाप करने लगी थी. तब उसने फलसफाई अंदाज में कहा था, "बड़के की मैया, जान दे ससूरे कू. जे दुनिया बहुत बड़ी है. खा कमा लेगा कहीं भी. हमें का फरक पड़े है."

उसे लगा कि वह मर गया है और उसके अंदर एक कुत्ता जिंदा हो गया है. जिंदगी की समस्त क्रूरताओं और विसंगतियों पर वह भौंकने लगा था.

"उस्तादजी! यह तुम्हें क्या हो रहा है?" जगतार बुरी तरह चौंक गया.

वह भौंक रहा था और हाथों को जोड़ चुल्लू बना, पानी पिलाने का इशारा करने लगा था.

"पानी चाहिए? अभी लाया. . ." कहकर जगतार तेज कदमों से बाजार की तरफ बढ़ गया.

उसका तन भट्टी की तरह तपने लगा. आंखों के आगे रंग-बिरंगे गोले फूटने लगे. अंदर का कुत्ता जोर-जोर से भौंक रहा था. उसका अंग प्रत्यंग ऐंठने लगा था.

तभी जगतार लौट आया. उसके हाथ में एक शीशे का गिलास था. उसमे पानी भरा था.

"लो उस्ताद, पानी पियो."

उसने पानी देखा और आतंकित हो गया. "नहीं, मुझे नहीं चाहिए." कहता हुआ वह उठा और भागने की कोशिश में एक पत्थर से टकराकर मुंह के बल तपती जमीन पर गिर पड़ा.

जगतार ने उसे उठाकर, जामुन के पेड़ की छाया में लिटाया. वह पानी से डर रहा था तो इसका मतलब है कि ...? जगतार ने सोचा और पलभर को वह कांप गया. "मेरी कमली चली गयी. . . मेरा बड़का भाग गया. .. .मेरी राधा जा रही है. . .मैं क्या करूंगा इस सुअरबाड़े में? अरे ओए जगतारा. . . क्या जाते वक्त दो बूंद पानी भी नहीं पिलाएगा रे?" वह बोल नहीं, भौंक रहा था.

जगतार ने जैसे ही पानी का गिलास उसकी तरफ बढ़ाया कि. . . कुत्तागाड़ी में कैद कुतिया जार-जार रोने लगी. □

● **बाबर प्लेस, नयी दिल्ली-110001**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म: .... सन् 1924—निधन : 11 नवंबर, सन् 1984

अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा ...

बारह नवंबर की सुबह मैं आफिस के कमरे में बैठा सोच रहा था कि अभी दरवाजा खुलेगा, एक गोरा-चिट्टा साठ साल का नौजवान अपने पतले और सुर्ख होंठों पर शरारती मुस्कान बिखेरे आयेगा और कहेगा, "मुद्गल, मैं चाय या सिगरेट पीने नहीं आया, वैसे तुम श्रद्धा से आफर करोगे तो तुम्हारा दिल भी नहीं तोड़ूंगा. . ." लेकिन प्रवेश किया मेरे 'दिनमान' के साथी माहेश्वर दयालु गंगवार ने. उन्होंने रुंधी हुई आवाज में कहा, "आपके घर का फोन ही नहीं मिलता, आपने श्यामलालजी का समाचार पढ़ा?"

"कैसा समाचार? वे तो अभी आ रहे होंगे." मैं कह तो गया, लेकिन गंगवार की सूरत और आवाज से मन भारी होने लगा. सुबह बहुत जल्दी निकल पड़ा था, इसीलिए अखबार भी नहीं देख पाया था.

"अब वे कभी नहीं आयेंगे, वे हमारे बीच नहीं रहे. कल उन्हें दिल का दौरा पड़ा था."

और मुझे लगा कि वह पंडितजी (पं. श्यामलाल शर्मा) जो हमेशा दिल न तोड़ने की बात कहा करते थे, जाते-जाते सचमुच दिल तोड़ गये हैं.

आठ नवंबर को पंडितजी का एक बहुत ही प्यारा पत्र आया था. लिखा था—"..बारह नवंबर को एक सप्ताह के लिए दिल्ली आ रहा हूं, उसी दिन मुलाकात होगी.. बहुत दिन हो गये मुफ्त की चाय-सिगरेट पियें, मंगवा के रखना. . ." लग रहा है अब इस कमरे में कोई भी ऐसा शख्स नहीं आयेगा, जो इतने खुले दिल से मिले और आग्रहपूर्वक चाय आफर करने पर कहे—"... अब तुम उपकृत हुए." यह सही है कि सभी बंधु-मित्र उनके सानिध्य से स्वयं को उपकृत ही अनुभव करते थे.

श्यामलालजी कथा-संसार के लिए यदि सुपरिचित नहीं थे तो अपरिचित भी नहीं थे. उन्होंने स्वाधीनता संघर्ष के दौर में कुछ कहानियां लिखी थीं, जो तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुई थीं. फिर राजनीति और पत्रकारिता में उनका कहानी लेखन खो गया.

उन्होंने स्व. मानवेंद्र नाथ राय के निकट सहयोगी के रूप में उनके दैनिक पत्र 'वैनगार्ड' में कार्य किया और फिर इसी के हिंदी संस्करण 'नया हिंदुस्तान' दैनिक का संपादन. अनेक पत्र-पत्रिकाओं में राजनीति, समाज विज्ञान और दर्शन पर निबंध लिखे.

अपराध शास्त्र और जेल सुधार पर भी कार्य किया. आकाशवाणी के समाचार विभाग में काफी लंबे समय तक कार्य किया.

'सारिका' का सहयोगी समाचार साप्ताहिक 'दिनमान' पंडितजी को कभी नहीं भूल सकता. दो दशकों तक वह 'दिनमान' के संपादकीय विभाग में रहे. 'दिनमान' में रहते हुए ही उन्होंने फिर से रचनात्मक लेखन शुरू कर दिया था. 'सारिका' में उनकी कुछ कहानियां प्रकाशित हुईं. 'सारिका' के लिए ही उन्होंने काफी समय तक 'अंतःपुर से' स्तंभ लिखा. पिछले दिनों उन्होंने 'सारिका' के लिए एक व्यंग्य रचना दी थी, उसे हम अगले पृष्ठों पर प्रकाशित कर रहे हैं. आजकल वह अपना एक उपन्यास पूरा करने में लगे थे.

वे कहा करते थे, कि "मैं नव मानववाद आंदोलन और नास्तिकवाद को समर्पित हूं.. कि मैं निरंतर बंधन मुक्त होने वाले आत्मनिष्ठ मानव की कल्पना किया करता हूं. . ." और वही कल्पना करते-करते आज वे स्वयं आत्मनिष्ठ और देह-बंधन मुक्त हो गये, लेकिन किसी को अपने आत्मीय के लिए स्वर्गीय सोचना, कहना और लिखना बहुत तकलीफदेह होता है.

पंडितजी को मेरे और समस्त 'सारिका' परिवार के शत-शत नमन.

—अ. ना. मुद्गल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंग्यकथा

किस्सा अंग्रेजी दां का

■ श्यामलाल शर्मा

बीरू को अपने पिता की दूध-दही की दूकान के नाम तक से नफरत थी, लेकिन एक सुबह लोगों ने देखा कि बीरू दूकान पर बैठा दूध-दही बेच रहा है. पढ़िए एक अंग्रेजी दां युवक की रोचक दास्तान--

बीरू ने दूध-दही की पुश्तैनी दूकान पर बैठने के लिए तो मिडिल पास नहीं किया था. आखिर उसने मिडिल तक तो अंग्रेजी पढ़ी है. यहां इस कस्बे में अंग्रेजी पढ़ी किसने है. सफाई दरोगा चंदूलाल जरूर अंग्रेजी पढ़ा हुआ है, क्योंकि वह अपने मातहत काम करने वाले भंगियों को डांटने-फटकारने में अक्सर अंग्रेजी का इस्तेमाल करता था. "डैमफूल काम नहीं करेगा तो डिसमिस कर दिया जायेगा. कहीं भी डर्टी मिलेगा तो हम ऊपर रिर्पोट करेंगे?" आदि. बीरू तो कहीं इससे ज्यादा अंग्रेजी के शब्द इस्तेमाल कर सकता है, पर सफाई दरोगा का रोब बहुत पड़ता है. एक तो वह लंबा है. तंदुरुस्त है, फिर खाकी नेकर, मोजे और खाकी कुर्ता और उस पर खाकी हैट, हाथ में एक बेंत, अंग्रेजी बोलना इसी पोशाक में फबता है, पर बीरू का एक तो कद छोटा, फिर दुबला-पतला और ऊपर से धोती और कमीज, पैर में चप्पल भी मुश्किल से होती है. हां! उसने कुछ पैसे जमा करके एक चश्मा खरीद लिया था. उसकी आंखें खराब नहीं थीं, पर चश्मा लगाये बिना आदमी पढ़ा-लिखा-सा लगता ही नहीं है, अंग्रेजी पढ़ा-लिखा तो बिल्कुल ही नहीं लगता.

मंगू हलवाई के डांटने-फटकारने पर भी बीरू दूकान पर नहीं बैठता था. बाप कहता भी, "दूकान पर नहीं बैठेगा तो करेगा क्या? मैंने तो दूकान हर्जा करके मिडिल तक पढ़ा भी दिया, पर निन्ने परचूनिये के तो दोनों लड़के पांच साल की उम्र से ही दूकान पर बैठने लगे थे. आठ साल की उम्र से तो उसका बड़ा लड़का आढ़त से सामान तुलवाकर ले आता था. इसे मिडिल तक पढ़ाकर तो मैंने अपना नास ही कर लिया. दूकान पर बैठने में अपनी हतक समझता है. चश्मा लगाये बस इधर-उधर घूमता रहता है या फिर बैदजी की दूकान पर बैठकर अखबार से सिर मारेगा. फिर इधर-उधर खबर सुनाता फिरेगा. जब डांट-फटकार का कोई असर नहीं हुआ तो मंगू हलवाई एक दिन समझाने-बुझाने लगे, "बेटा, दूकान संभालो. अभी तक तो हम दूध-दही बेचते चले आ रहे हैं. अब बर्फी, लड्डू और कलाकंद बनाकर पूरी हलवाई की दूकान बन सकती है. लेखा को देख ले, पहले बाल्टी लेकर घर-घर दूध देने जाता था. अब गरम दूध मलाई डालकर बेचता है. पेड़ा, कलाकंद और लड्डू भी रखता है. उसका तो लड़का भी नहीं है. एक नौकर रखकर अकेला दूकान चलाता है. तू बैठने लगेगा तो हमारी दूकान में भी चार मिठाइयां दिखाई पड़ेंगी. फिर तू पढ़ा-लिखा है, गाहकों से भी अच्छी तरह बात करेगा. ये बंगाली अस्पताल वाले तो तेरे से ही मिठाई लिया करेंगे. तू बीच-बीच में अंग्रेजी बोलकर उन्हें ऐसा पटा लेगा कि बस सीधे यहीं आया करेंगे, पर बीरू को बाप की ये सब बातें बकवास ही लग रही थीं. दूकान का नाम सुनते ही उसे गुस्सा आता था. तुनककर बोला, "मुझे मिल्क और स्वीट वीट्स सेल करके अपना लाइवलीहुड नहीं कमाना है. कोई काम करूंगा भी तो ऐसा करूंगा, सब देखते रह जायें. अभी मैं थिंक कर रहा हूं. मुझे डिस्टर्ब मत किया करो. अपना वर्क देखो."

बेचारे मंगू की समझ में कुछ नहीं आया. वह बस इतना ही समझा. लड़का दूकान पर नहीं बैठेगा. बेचारा सिर पीटकर रह गया.

इधर बीरू सबेरे से शाम तक इधर-उधर घूमता. कभी डाक बाबू मनोहरलालजी के पास जाकर बात करता, "साहब, आपका काम भी बड़ा डिफिकल्ट है. इतना काम रहता है कि आई आप रेज कर ही नहीं सकते. वैसे तो यहां अनएजूकेटेड लोग हैं. किसी की पोस्ट आती ही नहीं है, पर फिर भी वैद लोगों का मेडीसिन के पार्सलों का वर्क रहता ही है." मनोहरलाल बाबू बीरू के आते ही कलम कान पर रखकर उनकी बात सुनने लगते थे और बातचीत जरा लंबी करके उसकी अंग्रेजी का मजा लिया करते थे.

वहां से बीरू चला तो रास्ते में सफाई दरोगा चंदूलाल से अपने उसी अंदाज में बात करता, "कहिए दरोगा साहब, आपकी वजह से कस्बे में क्लीनीनेस तो रहती है, पर इवनिंग में वाटर से सड़कें वाश करने का मैनेजमेंट हो जाये तो क्या कहने."

दरोगा साहब पहले तो मन ही मन हंसते, लेकिन फिर जरा गंभीर होकर कहते, "हमारी म्युनिसपैल्टी के पास फंड्स नहीं हैं कि वाटर टैंक लाकर यह इंतजाम कर दें."

इस पर बीरू जरा अपने आप को बहुत महत्वपूर्ण मानता. थोड़ी देर को वह समझता कि यह म्युनिसपिल कर्मचारी अगर इस बारे में फंड्स की शिकायत कर रहा है तो यह समझ कर ही कर रहा है कि कस्बे में बस मैं ही पढ़ा-लिखा हूं. थोड़ा अकड़कर वह कहता, "इस प्रोबलम पर मैं आपके सेक्रेट्री से टॉक कर सकता हूं, रीयली, मैं इस कस्बे के सेनीटेशन के लिए हर सेकरीफाइस कर सकता हूं." चंदूलाल भी जरा चुस्की लेते. कहते, "बस, आप जैसे एजूकेटेड इस कस्बे में हो जायें तो यह हैवन बन जाये." अब बीरू से पूरी अंग्रेजी बोले बिना नहीं रहा जाता. जरा हाथ उठाकर कहता, "यू आर राइट, यू आर राइट."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीरू का दिन इसी तरह गुजरता. वह आगे बढ़ता तो व्यासजी का लड़का कैलाश उसे मिलता. हाथ में चिट्ठी है, जो वह डाक में डालने जा रहा है. बीरू उसे देखता है. पता हिंदी में लिखा है. बीरू देखते ही भड़क उठता है, "ये क्या, पता तो कम से कम अंग्रेजी में लिखा होना चाहिए. तुम लेटर एनवेलेप मेरे पास ले आया करो. मैं अंग्रेजी में लिख दिया करूंगा."

कैलाश को भी मजा आ रहा था. बोला, "तो बीरू बाबू, इसी पर अंग्रेजी में लिख दो." बीरू को यहां अपना महत्व पहले से भी अधिक लगा. देखा तो कलम पास नहीं था. बोले, "चलो, डाक बाबू के पास ही चलते हैं. वहां मैं अंग्रेजी में एड्रेस लिख दूंगा." बीरू बड़े गर्व के साथ आगे और कैलाश पीछे. सीधे डाक बाबू मनोहरलालजी के पास पहुंचे. बोले, "यहां कितना मैंने कहा, एड्रेस तो कम से कम इंगलिश में होना चाहिए. लोगों को पता चले, यहां भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे हैं. जरा कलम तो दीजिए." कैलाश ने लिफाफा आगे बढ़ा दिया. हिंदी में पता लिखा था 'जयराम, छोटे स्टेशन मास्टर, जयपुर'—बीरू ने उसके नीचे अंग्रेजी में पता लिख दिया था— 'जयराम, लिटिल स्टेशन मास्टर, जयपुर.' डाक बाबू देख-देखकर हंस रहे थे. बोले कुछ नहीं. लिफाफा कैलाश को देते हुए बीरू ने कहा, "जाओ, डाल आओ."

फिर बीरू कहीं और जाकर लोगों को सलाह-मशविरा देता. वैदजी के यहां अखबार पढ़ता और शाम को चौक बाजार में जाकर कभी फुत्तू हलवाई तो कभी निन्ने लाला की दूकान पर खबरें सुनाता, "अमरीका की तरफ से डिक्लेरेशन हो गया है. रूस पर एटेक नहीं करेगा. चीन से भी वह बिजनेस कर रहा है. उधर वैस्ट जर्मनी ने इतना मनी पैदा कर लिया है कि वह अमरीका जैसे ग्रेट कंट्री की हेल्प को तैयार है."

पर सुनने वाले अचानक कहते, "बीरू बाबू, आप तो विलायत की खबर बता रहे हैं, कुछ हिंदुस्तान की भी तो बताइए." तो बीरू जरा नाक-भौं सिकोड़कर कहता, "तुम्हारे हिंदुस्तान

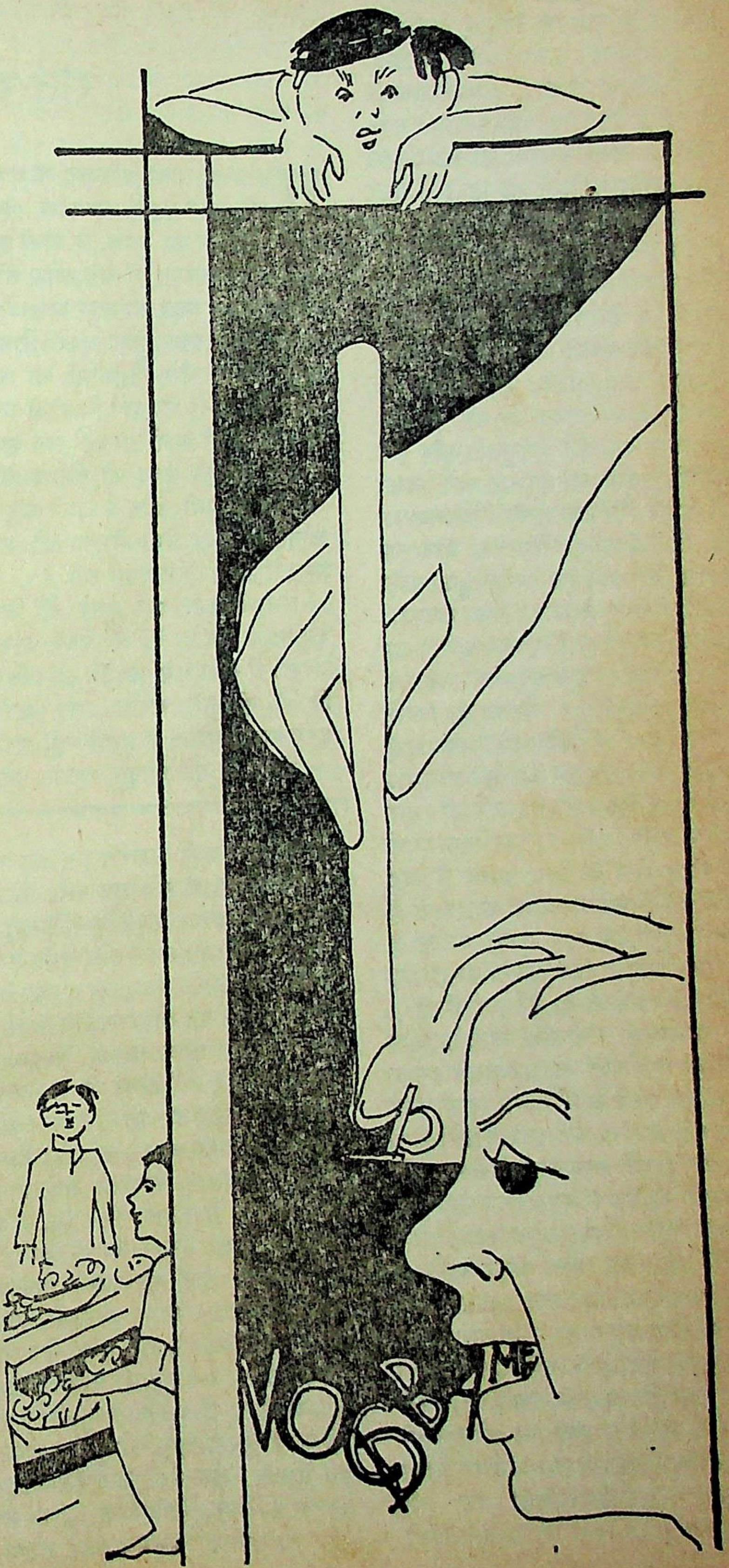

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रखा क्या है. अब हमारे कस्बे में ही देखो, लोग एंपटी बैठे हुए विदआउट हैड और फीट की बातें करते रहते हैं. लाइफ तो अंग्रेजों की है. अब डिफीकल्टी तो यह है कि आप अंग्रेजी जानते नहीं. यहां इस कस्बे में एक भी अंग्रेजी का पेपर आता नहीं. मैं तो हिंदी के पेपर से इंटरनेशनल न्यूज रेज करके कुछ एचीव करता हूं. आप लोगों के बिटविन बैठना भी बेकार है." यह कहकर बीरू वहां से चल देता और चुंगी के मुंशी किशनलाल के पास जा बैठता. मुंशीजी उर्दू दां थे, पर अंग्रेजों और अंग्रेजी के बड़े भक्त थे. तब तो बीरू की बात वह गौर से सुनते और कुछ प्रभावित होने का आभास देते. बातों ही बातों में जिक्र आया, "राजीव आ रहा है." बीरू कुछ प्रसन्नता और कुछ गौरव का अनुभव करते हुए बोले, "वही पं. गया प्रसाद का छोटा लड़का." मुंशीजी ने कहा, "हां हां वही." बस फिर क्या, बीरू शुरू हो गया. भई, बस कस्बे का वही एक लड़का है, जिसने अपना जबर्दस्त डैवेलपमेंट किया है. पहली दूसरी तीसरी तक मेरे साथ रीड एंड राइट किया है. अब की तो सुना फॉरन कंट्रीज गया था. हर साल जाड़ों में पंद्रह डेज के लिए आता है वह. लोग तो मिलने को स्टैंड अप रहते हैं. बात बहुत देर तक मुझसे करता है. आखिर उससे टॉक करने वाला यहां कोई और अंग्रेजी दां है? एक मैं ही हूं.

वास्तव में राजीव के आने का बीरू को भी पता नहीं था, पर सबसे ज्यादा रोब वह कस्बे के लोगों पर राजीव को लेकर ही मारता था. राजीव इसी कस्बे का था. दिल्ली जाकर उसने लेखक और पत्रकार के रूप में बहुत नाम पाया था. अक्सर यूरोप जाता रहता था. कस्बे में उसके आने की चर्चा बहुत पहले से होने लगती थी और जब वह आ जाता था तो लोग बड़े चाव से मिलते थे, पर बीरू की अंग्रेजी में उसे इतना मजा आता था कि उसे बिठाकर वह घंटों बातें करता था. जब भी कोई कस्बे का प्रतिष्ठित आदमी उससे मिलने आता तो बीरू वहां बैठा मिलता. बस, यही बीरू का सबसे बड़ा गौरव था. तभी तो वह राजीव को लेकर कह सकता था, "राजीव यहां किससे बात करे. अंग्रेजी कोई नहीं जानता, एजूकेटेट कोई नहीं." बीरू के आने की खबर उसे मुंशीजी से मिले, यह उसके लिए बहुत तकलीफ की बात थी. वह सीधा राजीव के भाई सत्तो के पास पहुंचा. बोला, "क्या भाई साहब आ रहे हैं." सत्तो भी राजीव के शौक को समझता था. उसे पता था, राजीव के समय काटने का यहां सबसे दिलचस्प साधन क्या हो सकता है. बड़े उत्साह से बोला, "अरे हां, मैं तो भूल ही गया. परसों आ रहे हैं."

बीरू के लिए यह काफी उत्साहजनक सामाचार था. अपने उसी लहजे में बोला, "अक्सर थ्री फोर डेज स्टे करते हैं, पर अब की तो फॉरेन रिटर्न होकर आ रहे हैं. एट लीस्ट टू वीक्स तो स्टे करना ही चाहिए." सत्तू हंसी रोकते हुए बोला, "अब आप उन्हें इतने दिन ठहरने को मना लीजियेगा." बीरू को और भी गर्व का अनुभव हुआ. बोला, 'ऊनी, आप लुक करना. मैं उनसे दिस टाइम दो सप्ताह का एग्रीमेंट करा लूंगा. फैंडशिप भी कोई थिंग होती है."

बीरू यह कह चल दिया. अब उसे कस्बे में यह खबर फैलानी थी कि राजीव आ रहा है. वह विदेश जाने के बाद पहली बार कस्बे में आ रहा है. इससे बीरू का अपना महत्व बढ़ जाता है. वैसे तो वह बाजार और चौराहों पर फिरता है, पर जब राजीव यहां होता है तो उसके बैठने की एक जगह होती है. राजीव बाबू कोट पतलून पहने टाई लगाये ओवरकोट हाथ पर डाले निकलते हैं तो बीरू उनके साथ होता है. लोग देखते ही रह जाते हैं. सोचते होगें, 'बीरू में ऐसी क्या खास बात है, जो राजीव बाबू यहां आकर उसे ही साथ रखते हैं.'

औरों को उनसे बात करने का कम मौका मिलता है. राजीव कस्बे में सभी को बता चुका था, परसों राजीव बाबू आ रहे हैं.

फिजी की एक लोककथा

रोते-रोते सो गयी!

एक उच्च सामंत परिवार की युवती थी और एक साधारण कृषक परिवार का युवक. वे दोनों एक-दूसरे पर आशक्त हो गये और चोरी छिपे दोनों में प्यार का मधुर खेल चलने लगा. मगर इश्क और मुश्क छिपाये नहीं छिपते. जैसे ही लोगों को पता लगा कि दोनों में प्यार है, दोनों दलों के नेताओं को मानो आग ही लग गयी. उनकी पुश्तैनी घृणा की दीवार और मजबूत हो गयी और वे अपने दल के लोगों के साथ प्रेमी-प्रेमिका को धर-पकड़ने का षड्यंत्र रचने लगे.

प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे. वे दोनों जाकर जंगलों में छिप गये. उन्होंने सोच लिया कि वे संग-संग मरना पसंद करेंगे, परंतु कबीलेवालों के हाथों नहीं मरेंगे. जंगल में एकाकीपन, एकांत और सुरक्षा की भावना से वे एक दूसरे के और भी करीब होते चले गये. जंगल के वृक्ष, जानवर और हवा भी उनके एक होने से मानो प्रसन्न थे. दोनों दलों के लोग रोज उन दोनों की खोज में जंगल को छानते रहते थे, पर वे किसी भांति अपने को सुरक्षित छिपाये हुए थे. उनकी अनुपस्थिति से दोनों दलों का खून खौल रहा था. वे उन्हें पकड़ने हेतु जंगलों को तहस-नहस करने लगे. . . और एक दिन प्रेमी उन क्रूर हाथों द्वारा पकड़ा गया. प्रेमिका कहीं छिपी हुई थी. वह दुष्टों के हाथ नहीं पड़ी, इस बात से प्रेमी भी बहुत संतोष का अनुभव कर रहा था, क्योंकि वह अपने जीते जी प्रेमिका पर अत्याचार बर्दाश्त नहीं कर सकता था. प्रेमी को सबके सामने सजा सुनाई गयी और परिणामस्वरूप उसे एक पेड़ से बांध कर उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर भालों से छलनी कर दिया गया. प्रेमी ने उफ तक न की. बस, अपनी प्रेमिका का नाम लेता हुआ फानी संसार से विदा ले गया. शत्रुओं ने उसकी लाश उसी जंगल में स्थित एक तालाब में फेंक दी. दो प्रेमी हृदयों को अलग कर अपने उद्देश्य को लगभग पूरा होता देख लोगों ने युवती को खोजने की कोशिश नहीं की.

जमाने की सतायी मासूम प्रेमिका पर्वत की कंदरा में छिपकर रहने लगी. उसकी भूख-प्यास मर गयी. दिन भर वह कंदरा में रहती और सूर्य के डूबते ही उस तालाब के किनारे बैठ उसे निहारती और रोती सारी रात. वह उस भयावह करुणा के तालाब के किनारे बैठी रोती रहती और रोते-रोते कभी सो भी जाती. सूर्य के उदय होते ही वह वापस अपनी कंदरा में छिप जाती. मन और शरीर से वह घुलती-घुलती एकदम पिंजर होने लगी.

एक बार उस पर्वत पर कहीं से चली आ रही एक टोली ने उसकी कंदरा में झांका और उस पिंजर को पहचानने की कोशिश करने लगी. जैसे ही नायिका की नजर उनपर पड़ी, उसमें जाने कहां से शक्ति आ गयी और इसके पहले कि वे लोग उसे पकड़ पाते, वह तेजी से भागकर उसी तालाब में कूद गयी, जहां उसके प्रेमी की आत्मा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी.

कुछ महीनों बाद लोगों ने देखा कि उस तालाब में एक नये आकार-प्रकार का फूल उग आया है, जो सूर्यास्त होने के बाद खिलता है और सूर्योदय होने पर मुरझा जाता है. उस फूल को रात के समय रोते हुए अनेक दर्शकों ने देखा. . .और उस प्रेमिका की याद में उन्होंने इस फूल का नाम रखा—तंगीमोदिया! यानी रोते रोते सो गयी.

आज भी आप किसी स्तब्ध चांदनी रात में उस तालाब में इस फूल के रूप में विरहणी प्रेमिका को देख सकते हैं, जो घुटनों में मुंह दिये बूंद-बूंद आंसू बहाती है. यह विशाल फूल दुनिया भर में केवल फिजी में ही खिलता है. □

▣ प्रस्तुति : हरीश नवल

राजीव बाबू आज सवेरे आ गये थे. आते ही उन्होंने बीरू को पूछा. उनका भाई सत्तो बोला. "यहीं इधर-उधर घूम रहा होगा. उसे आपके आने का पता है, आयेगा जरूर." अभी राजीव बाबू नाश्ता करके उठे ही थे कि बीरू आ गया. आज धोती की जगह बीरू पाजामा पहने हुए था. कमीज भी कुछ साफ थी, पर शौकिया चश्मा वही पुराना था. राजीव बाबू बीरू को देखते ही खिल उठे. तपाक से मिले. बोले, "मैं आपका ही वेट कर रहा था." अब तो बीरू को अपनी अंग्रेजी दिखाने का मौका मिला, "यह, मुझे तीन-चार दिन से आपके आने की होप थी, पर दिस टाइम आपको अपना स्टेइंक्रीज करना पड़ेगा. आप फॉरेन रिटर्न होकर आये हैं. मुझे तो बहुत-सी टॉक आपसे करनी है. यहां के लोगों में तो फॉरेन रिटर्न की कोई प्राइस ही नहीं."

राजीव मजा ले रहे थे, पर थोड़ा गंभीर होकर बोले, "अभी तो मैं आया हूं. आपसे कनवरसेशन होगा. तब मैं थिंक करूंगा." अब तो बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया था. राजीव बोले, "आप आजकल क्या कर रहे हैं.

बीरू थोड़ा अकड़कर बैठ गया. बोला, "फादर शॉप पर बैठने की टाक करते हैं. अब आप ही बताइए, ऐजूकेटेड होकर मैं मिल्क और स्वीटमीट सेल करूंगा." राजीव थोड़ा गंभीर होकर बोले, "नहीं . . . . इट इज आल नांसेंस, पर ह्वाट यू वांट टु डू." अब बीरू को बात करने में मजा आ रहा था. तपाक से बोला, "मैं इस टाउन को माडर्न बनाने के लिए वर्क करूंगा. ऑफिशियल्स से मिलकर यहां फैसेलिटीज कराऊंगा. अभी दो-तीन दिन में कलक्टर इज कमिंग. यहां के लोग तो सबार्डनिट की तरह हैं. पब्लिक की साइड से मैं टॉक करूंगा."

राजीव अपनी हंसी रोकते हुए बोले, "यह तो ठीक है. आप ही ले-देकर एजुकेटेड हैं. कलक्टर से क्या गवर्नर से भी आप बात कर सकते हैं."

बीरू को पहली बार एहसास हुआ; राजीव जैसे आदमी की नजर में वह क्या है. कुछ और लोग मिलने आ गये थे. इधर-उधर की बातें होती रहीं. फिर बीरू चला गया. यही सिलसिला चलेगा कई दिन. राजीव बाबू अपना अधिक समय बीरू के साथ ही बिताते थे.

कस्बे में कलक्टर आ चुका था. चारों तरफ सनसनी-सी थी. राजीव कमरे में बैठे पाइप पीते रहे और बीरू के बारे में सोचते रहे. अचानक किसी ने खबर दी कि बीरू को पुलिस ले जा रही है. राजीव की समझ में कुछ नहीं आया. वह स्लीपिंग गाउन पहने ही बाजार की तरफ गये. कलक्टर के चारों तरफ भीड़-सी थी. पुलिस थानेदार ने बीरू का हाथ पकड़ रखा था और कलक्टर गुस्से में अंग्रेजी में कह रहा था, "टेक दिस इडीयट टू पुलिस स्टेशन ब्लडी रास्कल." पता चला, कलक्टर के कस्बे के चौराहे पर आते ही बीरू वहां पहुंच गया था. आस-पास के अहलकारों की उपेक्षा करते हुए वह सीधे कलक्टर के आगे खड़ा हो गया. हाथ बढ़ाते हुए बोला, "प्लीज़, शेक हैंड." कलक्टर थोड़ा झिझका. उसने अनिच्छा से हाथ बढ़ाया और फिर बीरू ने तपाक से पास ही खड़ी कलक्टर की पत्नी के आगे हाथ बढ़ा दिया. सब लोग सहमे हुए खड़े थे, लेकिन जब कलक्टर की लड़की की ओर इशारा करते हुए बीरू कह उठा, "युअर गर्ल सर." तो कलक्टर के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने बीरू को थाने ले चलने का आदेश दिया था, पर राजीव ने कलक्टर को सब समझाया. राजीव बाबू की बात कलक्टर की समझ में आ गयी थी. बीरू को थानेदार ने धक्का देकर अलग कर दिया. राजीव को सब पता चल गया था. वह रास्ते में कुछ बोला नहीं. अगले दिन सबने देखा, बीरू अपनी दूकान पर बैठा दूध-दही बेच रहा था. राजीव बाबू ने भी देखा. वह मुस्कराये. पूछा, "कहो बीरू, कैसे हो." बीरू हाथ जोड़कर नम्रता से बोला, "साहब, आपकी कृपा है." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेबीलोन

• शैवाल

बेबी, गुटका रामायण की तरह बंद पड़ी थी, कालीन पर. मिसेज नमिता चंद्रा आर्त्त स्वर में विलाप कर रही थीं, "बोड़ा बाबू, अब क्या होगा." उनके आंसू सफेद गालों पर केंचुल की तरह चमक रहे थे. काजल की एक गहरी लकीर होंठों तक आकर हुसैन की पेंटिंग में तब्दील होती जा रही थी. बड़ा बाबू अंगूर के बोनासाई पेड़ की तरह खूबसूरत लग रहा था, आकर्षक लग रहा था. मिसेज नमिता चंद्रा उसके खल्वाट सिर पर अंगूर बीन रही थीं.

बेबी के पपड़ियाए होंठ, कागज के प्लेट की तरह तुड़मुड़ा रहा चेहरा, हवा में कांपती अलगनी की तरह भौंह—सब कुछ बता रहे थे कि बेबी की चुप्पी घोड़े की नाक जैसी खतरनाक है. एक घूंसा पड़ा नहीं कि बिदककर राह छोड़ देगी.

इससे पहले कि कुछ और हो—सर्ग परिवर्तन हो या कीर्त्तन का दूसरा चरण, बड़ा बाबू ने कान से सूंघकर और आंख से थपथपाकर बताया कि जो होगा, सब ठीक होगा. सिर्फ बेबी की मां को चुप रहना पड़ेगा. उनके आंसू मुतही नदी की तरह बीहड़ हैं. उसमें सिर्फ वह नहीं, सारा शहर बह जायेगा, लेकिन फायदा कुछ नहीं होगा. सिर्फ एकाध मिनिस्टरनुमा आदमी हवाई जहाज से सर्वेक्षण कर जायेगा. जवान बेबी की किस्मत से शादी का 'ओम नमः स्वाहा' पंडित के चरित्र की तरह गायब हो जायेगा.

बेबी की मां ने नाक सुड़सुड़ाया. पांच सौ की साड़ी से काजल पोंछा. ठीक वैसे ही, जैसे एयर-कंडीशंड रूम में मथुरा के बलात्कार पर भाषण कर रही हों, कैंपाकोला पीते हुए. बेबी खड़ी हो गयी, हाथी की तरह कान ऊंचे करके. एक मिनट के लिए चुप्पी छितर गयी, हवा में, कालीन पर, चेहरे पर—सभी जगह अंगूर लटकने लगे.

"चुप रहने से क्या होगा?" बेबी की मां ने पूछा.

"सब कुछ होगा. आपकी स्थिति हीरोइन के पेट की तरह है. पेट की खबर बाजार में पहुंची कि फिल्म का भट्ठा बैठ गया. बच्चा होते-होते हीरोइन सेट पर झाड़ मारनेवाली बन जाती है. बड़ा बाबू ने संजीदगी के साथ रामायण पढ़ा. हीरोइन का उदाहरण इसलिए दिया, क्योंकि बेबी की मां को अब भी आशा है कि कोई न कोई प्रोड्यूसर उसे अपनी फिल्म के लिए 'साइन' कर लेगा. बेबी की मां ने आंखों की आर्द्रता से बात का वजन स्वीकार की और समाधि की हालत में आ गयी.

"घर में चुप्पी रहेगी, कोई कुछ नहीं बोलेगा. बाहर का पर्दा उतार लो. ताला लगा दो. कोई आये, पुकारे तो जवाब नहीं देना है?" बड़ा बाबू ने आदेश दिया.

बेबी सक्रिय हो गयी. बेबी की मां आंखें फाड़कर बड़ा बाबू को देख रही थी. उसकी आंखों के अंदर बैठा हुआ सुग्गा जोर-जोर से चीख रहा था—रूपू . . . कटोर कटोरे. . .

कमरे के कोने में चंद्रा साहब बैठे थे, मुस्करा रहे थे, जैसे जवाहर लाल नेहरू की तरह 'चिल्ड्रन डे' मना रहे हों. . . महीना खत्म हो रहा है, अनाज खत्म हो रहा है. बैंक बैलेंस 'मेंटेनेंस' की छत पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़कर प्रेमालाप कर रहा है. डैम केयर! कोई बात नहीं, कोई फिक्र नहीं. जिंदगी मोती के दानों की तरह कीमती है, पूरी चमक के साथ जिओ. दिन भर औरतें बदलो. बेबी का जो होगा, सो होगा. बेबी की मां बूढ़ी नहीं हुई. बेटा अभी जवान नहीं हुआ. सब अपने-अपने घाट लगेंगे.

"कोई नौकर तो अभी नहीं आया?" बड़ा बाबू ने पूछा.

"नहीं."

"और नाइट गार्ड?"

"वह सुबह चार बजे ही चला गया था."

"कोठी के आसपास कोई था?"

"होता तो जरूर आता."

"गो कि इस घटना की खबर किसी को नहीं है?"

"नहीं." बड़ा बाबू ने चैन की सांस ली. पसीना पोंछा. गंजे सिर पर हाथ फेरा. फिर निर्णायक स्वर में बोला, "साहब दौरे पर जायेंगे, रात के वक्त. तीन जिलों का दौरा करेंगे. मुझे बकरियों की पहचान है. काम भर गोश्त मिल जायेगा. शर्त्त सिर्फ एक है."

बेबी की मां कुछ नहीं बोली.

"आमदनी का आधा हिस्सा मेरा होगा." बड़ा बाबू ने गंभीर स्वर में प्रस्ताव रखा.

"आधा?" बेबी की मां रुआंसी हो गयी, "फिर बेबी की शादी का क्या होगा?"

"उतने में बेबी तो बेबी, आप भी चाहेंगी तो ससुराल पहुंच जायेंगी." बड़ा बाबू का अंदाज भद्दा था, लेकिन मिसेज चंद्रा उसे पचा गयीं, क्योंकि उसमें अंगूर लटक रहे थे.

बेबी लौट आयी तो बड़ा बाबू बाहर निकल आया. रूम में बैठकर योजनाएं बनाने लगा. दस बजे तक लोग कोठी पर आयेंगे. मिलने-मिलाने वाले, सेठ, बहुरूपिए, क्लर्क, नौकर सबको भगाना होगा, क्या कहना होगा? साहब सपरिवार बाहर चले गये. क्यों, कान्वेंट से ट्रंककाल आया था कि साहब का बच्चा बीमार है, लेकिन बकरी दूध कैसे देगी, जब यह खबर हो जायेगी कि गांधी बाहर चले गये हैं. . . फोन? हां, फोन करना होगा. बड़ा बाबू ने एक लिस्ट बनाया. फोन करना शुरू किया. एक लंबा सिलसिला.

"हलो! सेठ केजरीवाल? हां, मैं बड़ा बाबू. . . साहब बाहर जा रहे हैं. आज आपके केस का फाइनल करेंगे. . . हां, मैं भी जा रहा हूं. उनकी इच्छा है कि पत्रपुष्प आज ही मिले. . . ठीक, मैं साढ़े आठ बजे आ रहा हूं."

"हलो! छातावासीजी?. . . साहब आज सरप्राइज चैकिंग में निकल गये हैं. मैं इस बारे में नहीं कह सकता कि किस तरह की योजना बनी है. हां, जिसे बाहर भी जाना है. आपके गोदाम तो सारी जगहों पर हैं, इतने से कैसे काम चलेगा?. . . खैर ठीक है. मैं सात बजे आ रहा हूं."

"मिस्टर वरोदकर! प्रणाम, आप उसे कीजिए, जिसके दिमाग में सिट्ठी हो. साहब के पास कई कंपलेन आ चुके हैं. . . सबूत तो एक हजार हैं. पकड़े जाइएगा तो लाल दरवाजा की दूरी नापिएगा. आप अपनी मर्जी से दीजिए, साहब क्या कहेगा! आठ बजे?. . . हां, मैं ही आऊंगा."

"पन्नालालजी, चिरौरी सुनने का वक्त नहीं है. कल विधान सभा में फिर क्वेश्चन होगा. कौन संभालेगा. देखिए, यह मामला चने का दाना नहीं है, पत्थर है. . . जो सिर पर पड़ेगा तो चकनाचूर कर देगा. पत्थर का वजन देखकर ही बीस मांग रहा हूं. . ."

"लकी बाबू! हें-हें, कोई बात नहीं, आप तो बिहार के 'अनक्राउंड किंग हैं. . . हम जियेंगे कैसे, आपकी छत्रछाया में ही न? रिक्वेस्ट है. . साहब का बच्चा बहुत बीमार है. . . कम से कम दो हजार का बंदोबस्त. . ."

कोई बीस फोन करने के बाद बड़ा बाबू ने पसीना पोंछा. बाहर नौकर, दाई, अर्दली और एक आदमी थे. बड़ा बाबू उनकी तरफ मुखातिब हुआ, "साहब आज नहीं हैं. रांची गये, बच्चे को देखने. आप लोग जाइए."

"लेकिन कोई प्रोग्राम तो नहीं था?" एक ने पूछा.

"अगली बार से कहूंगा कि साहब आपसे हुकुम लेकर जायें." बड़ा बाबू ने खीझकर कहा. भीड़ छंट गयी. बड़ा बाबू शीशे के पार देखता रहा. लोग फाटक पार कर गये तो उसने राहत की सांस ली. . . मीस्टीरियस! जेम्स हेडली चेइज के कारनामों की तरह रहस्यमय! उफ यह! नाटक कैसे निभेगा? बेबी का क्या होगा?

बड़ा बाबू ने ओठों पर जीभ फेरी. आशान्वित हुआ कि अगला 'लोटस अवार्ड' उसे ही मिलेगा. . . बैस्ट एक्टर आफ द इयर!

दस बजे बड़ा बाबू नोटों की भारी-भरकम गड्डी के साथ स्टेशन पर हाजिर था. टेलीफोन बूथ में खड़ा फोन कर रहा था, जिला स्तर के अधिकारियों को.

"हलो! मिस्टर लाल,. . . चंद्रा साहब आपके जिले का सरप्राइज विजिट करेंगे. इधर बहुत सारी शिकायतें सुनने में आ रही हैं आपकी. चंद्रा साहब बोल रहे थे कि उन्हें बहुत दुख है, अपने लोग भी इस तरह का काम कर रहे हैं. . .

चांदनी अंदर आ गयी, रुपयों पर बैठ गयी. कमरा बेबीलोन बन गया. चांदनी चंद्रा साहब के पास गयी तो चंद्रा साहब के मुर्दे ने चांदनी को चूमा. क्यों और कैसे? राजनीति और प्रशासन के घृणित रूप के बीच हमारी अमानवीयता को उजागर करती विचारोत्तेजक कथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष भर तो कमाया आपने लाल साहब. अब हमारा भी फिनांशियल इयर शुरू करवाइए. . . रात के करीब आठ बजे पहुंच जायेंगे हम लोग. उनकी पीने की आदत से तो आप वाकिफ हैं. सामने मत आइएगा. इधर गालियां बहुत बकने लगे हैं. मेमसाहब से बात करवा दूंगा. . . जनाब, आप भी खूब कहते हैं. अपने यहां के दब्बू सेठों को फोन कीजिए कि चंद्रा साहब आ रहे हैं, चेकिंग के लिए. धोती ढीली हो जायेगी. पैसा बरसने लगेगा.. . . आप जैसा टैक्टवाला ऑफिसर ऐसा कहेगा तो हिंदुस्तान का भट्ठा बैठ जायेगा. ठीक है, प्रणाम."

तीन जिले के अधिकारियों को फोन करने के बाद वह बाहर आया, अपनी अक्ल को दाद देते हुए. अब के साले बड़े-बड़े ऑफिसर्स दोटकिया हो गये हैं. खुद लेते हैं. और लेना क्या, हाथ गंदा करते हैं. क्लर्क पर भरोसा नहीं, समझते हैं कि उनका हिस्सा खा जायेगा. साले, तुम्हारा जितना हिस्सा होना चाहिए, तुम्हारा जो मार्केटवैल्यू होना चाहिए, उसे तो तुम खुद बिगाड़ लेते हो. मेहतरों की तरह 'परबी' मांगते फिरते हो. तो तुम्हारी क्या इज्जत होगी. तुम तो किरानी बाबू से भी नीचे आ गये. मरो, बीवी से पेशा करवाओ.

'मुर्दा है बाबू. . . है-है. . . देख के पैर रखो बाबू!" तीव्र स्वर में वर्जनात्मक चीख सुनकर वह ठिठक गया. मुर्दे के करीब पैर पड़ा हुआ है, यह देखकर हतप्रभ हो गया. वितृष्णा और भय के मिले-जुले एहसास ने सारा बदन सिहरा दिया. छिटककर दूसरे कोने में खड़ा हो गया. दो मिनट सांस साधने की कोशिश करता रहा. लाश पर से कोशिश करते हुए भी निगाह नहीं छूट रही थी. मुर्दे के सिर में एक बड़ा-सा गढ़ा था, जिसमें खून जम गया था. चेहरा जगह-जगह घुराया हुआ. एक हाथ और एक पैर पूरा का पूरा साफ. नंगे शरीर पर जगह-जगह छिलने और कालिख के वीभत्स निशान. कातर ढंग से खुले हुए होंठ, जैसे अंधे भिखमंगे के होंठ कभी-कभी करुणाभाव जगाने के लिए खास ढंग से खुलते हैं. लाश को करीबन घेरे हुए चार आदमी. लूला आदमी दांतों बीच अगरबत्ती रखकर जला रहा था. अंधा आदमी खंजड़ी और फटी-फटी आवाज को साधने की कोशिश कर रहा था—इ जग स्सारा लखड़ी का. . . हो बाबा इ जग. . . 'तीसरा आदमी तेजी बरतते हुए रंगीन चौक से दुर्गा माता की तस्वीर बना रहा था. चौथा आदमी गांजा लटाते हुए चीख रहा था, "ससुरा आठ बज गिया. . . मुदा तू लोग अभी तक जनाना निचर सिंगार कर रहा है. . . फुरती कर, फुरती. . ."

बड़ा बाबू को यह सारा दृश्य धीरे-धीरे आनंदित करने लगा. मीस्टीरियस! जरूर साले लोग लाश के नाम पर पेशा कर रहे हैं. रहस्यभेदन करना चाहिए. बड़ा बाबू ने दांत पीसकर सांत्वना दिया अपने आपको. . .अभी तो कोई काम नहीं है, रात को सफर पर निकलना है. तब तक क्या किया जायेगा. इन थर्ड ग्रेड लोगों का नाटक देख लिया जाये?

गाड़ी की 'टहीस-टहसीस' करती आवाज. दो मिनट बाद सीढ़ियों पर रेल-पेल बढ़ने लगी. फाटक पर टी. सी. सक्रिय हो गया. बेटिकट देहाती मर्द-औरतों को रोककर अपने बगल में खड़ा करने लगा.

एक प्रसंग

'दो बीघा जमीन' और बियर

जिस दिन 'घोड़ागाड़ी' से मेरे रेस करने का दृश्य लिया गया, उस दिन दौड़-दौड़कर मेरी जो हालत हुई, उसका वर्णन नहीं कर सकता. कोलतार की तपती हुई सड़कों पर मेरे नंगे पांव जल रहे थे और उनपर बड़े-बड़े खूनी छाले उभर आये थे. मैं जब भी शूटिंग बंद करने के लिए प्रार्थना करता, बिमल राय कहते, "बस, दो शॉट और रह गये हैं." उस समय मेरे चेहरे पर दुःख और पीड़ा के भाव शायद बहुत स्पष्ट और स्वभाविक रूप में आ रहे थे. बिमल राय को उन्हें फिल्माने का लालच था और वे रुकने का नाम नहीं ले रहे थे. आखिर मैंने तंग पकड़कर कहा, "अब तो बियर की दो बोतलें मेरे सामने लाइए, तभी मैं दौड़ सकूंगा, वरना नहीं."

बिमल राय ने यकीन दिलाया कि शॉट खत्म होते ही असित सेन मुझे 'फर्पो' में ले जायेंगे और वहां मैं जितनी चाहूं, बियर पी सकूंगा. यह लालच दिलाकर उन्होंने कई शॉट और लिये.

आखिर जब असित सेन और मैं फर्पो पहुंचे तो पता लगा कि उस दिन 'ड्राई डे' था. मैंने बाहर निकलते ही असित सेन को गर्दन से पकड़ लिया और कहा, "जहां से भी हो, मेरे लिए बियर लाओ, वरना मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा!"

असित सेन ने काफी भटकने के बाद आखिर बियर प्राप्त कर ही ली, लेकिन तब तक मेरा जोश और जिस्म दोनों ठंडे हो चुके थे. तब मैंने ब्रांडी पीनी चाही. मैंने असित सेन से कहा, "अब मैं बियर नहीं पीऊंगा. मुझे ब्रांडी पिलाओ."

असित सेन के सब्र की हद हो चुकी थी. सो, हमारे बीच में अच्छा-खासा झगड़ा हुआ. असित सेन को बियर पिलाने का आदेश मिला था, सो वे बियर पिलायेंगे, ब्रांडी चाहे सस्ती ही क्यों न हो. आखिर मुझे बियर ही पीनी पड़ी, और बाद में ठंडे पेट और बेहद थकावट के कारण मुझे जुकाम हो गया. □

▣ बलराज साहनी की 'फिल्मी आत्मकथा' से

लूला आदमी बेतहाशा चीखने लगा, "माई-बाप. . . भय्या-बहिनी, लावारिस लाश है. . .कफन का वास्ते दो ठो पैसा दीजिए. . ." अंधा अपने ऊपर तेवर खाते हुए खंजड़ी और अपने फटे स्वर को ऊंचा करने की कोशिश कर रहा था, "ईज्जग साड़ा लखड़ी का वा भा ईज्ग साड़ा. . ."

टन्न-टन्न की आवाज करते हुए पैसे बरसने लगे. बड़ा बाबू का ध्यान अपने पोर्टफोलियो बैग पर गया. रुकना खतरनाक लगा. भीड़ में क्या हो जाये, क्या ठिकाना. बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू तेज कदमों से सीढ़ियां उतर गया. चक्कर काटकर स्टेशन के पिछवाड़े पहुंचा. एक खास लक्ष्य के साथ... थोड़ी-सी ताड़ी पी ली जाये. मौसम की शुरुआत हो गयी, लेकिन एक दिन भी चुल्लू भर पीने का मौका नहीं मिला.

बड़ा बाबू ने एक झोपड़ी के अंदर अपने को प्रविष्ट किया. बड़ा बाबू के गुरुगंभीर व्यक्तित्व ने काम किया. एक सांवली-सी औरत ने अलग कमरे में चटाई बिछा दी. मुस्करा कर पूछा, "एक सबनी?" बड़ा बाबू ने सिर हिलाया. देखा और परखा. बेबी से अधिक खूबसूरत है औरत, शरीर भी गठा हुआ. चेहरे पर सांवले रंग का तेज आब... औरत सबनी, छन्ना और गिलास आगे रख गयी.

बड़ा बाबू अगली योजना के कार्यान्वियन पर विचार करते हुए पीने लगा. खुद पैसा लेना ठीक नहीं. सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर क्यों ली जाये? बेबी की मां से क्यों नहीं 'रिसीव' करवाया जाये? कल को सेठिया लोग घेर लें, पीटने लगें तो वह क्या करेगा? बेबी की मां लेगी तो अपनी जिम्मेदारी खत्म हो जायेगी. बेबी की मां सब ठीक कर लेगी. समाजसेविका है, रोने की अच्छी 'प्रैक्टिस है.. सब संभाल लेगी. ठीक है, किसी जगह से सारे सेठिया लोगों को बेबी की मां से फोन करवा दिया जायेगा कि इतना पैसा मिल गया. सेठ भी कृतज्ञ होंगे, अपना भय भी घटेगा और बेबी भी ससुराल चली जायेगी.

पीने के बाद बड़ा बाबू ने दो-चार डकार लिये. बाहर झांककर देखा. अरे, वही लूला आदमी, वही गंजा सटानेवाला, वही चौक से तस्वीर बनानेवाला. बिजनेस का टाइम खत्म हो गया क्या? शायद इसीलिए 'रिक्रिएशन क्लब' में आ गये.

"परभुआ, मुर्दा गंधा रहा है. कल से कोई पैसा नहीं देगा. भूखों मरोगे सुसरे. दूसरे मुर्दे की जुगाड़ में निकलो." गांजा सटानेवाला आदेश दे रहा था.

लूला, अंधा, और तस्वीर बनानेवाला भाषण श्रवण कर रहे थे.

"का कहें गुरू! कल मुहल्ले में सरुपया की औरत टरक से चिपाकर मर गयी. कतनो कोशिश किया, लेकिन ऊ तैयार नहीं हुआ. हमने सौ रुपिया तक बात चलायी थी. गांजा पिलाकर समझाया भी कि बेटा कीरियाकरम हम लोगों के वास्ते नहीं है. कुछ पैसा कमा लो. अकाल का बखत है. चार दिन बाल-बच्चों का पेट भरेगा तो मुर्दे को पुण्य होगा, लेकिन ऊ साला अभी मेहराऊ को महरानी समझ रहा है. करजा ढूंढ़े चल रहा है." लूले ने लंबा भाषण दिया. लोग उलास खत्म करने के फेर में थे, इसलिए पचा गये. कोई असर दिल दिमाग पर हुआ हो, ऐसी बात नहीं थी, लेकिन बड़ा बाबू ने सिहरन महसूस किया या अजीब-सी वितृष्णा. अंदर कोई भीषण आतंक ट्रक की तरह हो घिरने लगा. बड़ा बाबू भागने की मुद्रा में आ गया... भाग चलो बेटा!

पहले जिले के डाकबंगले में प्रविष्ट होने से पहले बड़ा बाबू ने मिसेज चंद्रा को सुझाया, "साइलेंट रहना है. ज्यादा टॉक नहीं. अफसर से पैसा ले लेना है. आब्लाइज करने के लिए पूछ लेना है कि कोई प्राब्लम है. बाकी रूटीन वर्क कर लूंगा." बड़ा बाबू ने कार धीमी की. कार रुकी, बड़ा बाबू ने खिड़कियों के पर्दे को गौर से देखा... शोफर नहीं है, कोई पूछे तो क्या जवाब देगा? साहब की औघड़ तबीयत पर टाल देना बेहतर होगा. बड़ा बाबू ने मन ही मन जवाब-सवाल किया.

खानसामा के क्वार्टर की तरफ कुछ गहमागहमी थी. बड़ा बाबू आगे बढ़ा. थोड़ी दूर चलने के बाद दोनों ट्रेनों का मेल हो गया. सलाम-दुआ हुआ.

"इंतजाम हो गया?" बड़ा बाबू ने पूछा.

"खाने में आधे घंटे की देरी है." अफसर ने कहा.

"खाने की बात नहीं पूछ रहा हूं, फिनांसियल इयर की बात.. "

"हां, वो हो गया."

"मुझे कुछ इन्फार्मेशन रिकार्ड करवा दीजिए. उस पुरुषोतम लाल का क्या हुआ, डालडावाले सेठ का?"

"मैं तो खुद याद दिलानेवाला था. बेचारा अच्छा आदमी है, मुफ्त में मारा गया."

"बात अच्छेपन की कहां है?"

"सो तो मैं समझ रहा हूं," ऑफीसर खून के घूंट भरे स्वर में हंसा, "अच्छा होने का सर्टिफिकेट मुफ्त में मिलता है?"

बड़ा बाबू ने बात का रास्ता बदलने की कोशिश में कहा, "आइए, कहीं बैठ लें थोड़ी देर."

चलते-चलते ऑफिसर ने पूछा, "साहब कार से नहीं उतरे?"

"अच्छा किया. अपनी खैर मनाइए." बड़ा बाबू ने चुटकी लेते हुए कहा, "मेमसाहब से मिल लीजिएगा. साहब ने डाज से ज्यादा पी लिया है."

कमरे में बैठते-बैठते अफसर ने कहा, "वो होलसेलर मुरारका पट्टी पढ़ा रहा है.."

"तुरंत हिसाब करता हूं. फोन मिलाइए. कहिए कि चंद्रा साहब डाक बंगले में बुला रहे हैं."

ऑफिसर प्रफुल्लित हो गया. तेज अंगुलियों से डायल घुमाने लगा. चंद मिनटों के बाद लाइन मिल गयी. रौब बिजली-तरंग बनकर तैरने लगा, "हलो; सेठ मुरारका? ... चंद्रा साहब यहां डाक बंगले में हैं, आपको बुला रहे हैं या वहीं लेता आऊं?... वो भी हो सकता है. आप बड़े आदमी हैं, फुरस्त नहीं मिली. चंद्रा साहब आपके सेवक हैं, आ जायेंगे. ...पांच से काम नहीं चलेगा, खैरात बांट रहे हैं?... अच्छा, ठीक है. मैं आदमी भेज रहा हूं."

फोन रखकर अफसर ने उन्मुक्त ठहाका लगाया. वक्त की कीमत समझते हुए बड़ा बाबू ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, "धीमे हंसिए. मुरारका से मिले पैसे का हिसाब भी जोड़ लीजिए. अपना हिस्सा काटकर शेष हिसाब मेमसाहब को सुपुर्द कीजिए."

"और इन्फार्मेशन का क्या होगा?"

"एक कागज पर लिखकर भिजवा दीजिएगा. जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां रेड करना हो, कर लीजिएगा. रिपोर्ट भेज दीजिएगा. उसी को बेस बनाकर कार्रवाई हो जायेगी."

बड़ा बाबू के साथ अफसर बाहर आया. मेमसाहब कार से निकलकर चहलकदमी कर रही थीं. अफसर ने सलामी दी. मेमसाहब ने गुरुगंभीर स्वर में पूछा, "कोई प्राब्लम?"

"नो प्रोब्लम मैडम." अफसर ने अदब का प्रदर्शन करते हुए समस्या रूपी ब्रीफकेस मैडम के आगे कर दिया. मैडम ने थैंक्स दिया. बड़ा बाबू ने अफसर से कहा, "कार के पास मत जाइए. चंद्रा साहब के होश में आने का खतरा है." अफसर ने तत्काल पैर वापस खींच लिये.

तीन जिलों का दौरा करके जब कार गैरेज में वापस लौट रही थी, रात का एक बज रहा था. साहब को बड़ा बाबू ने कार से बाहर निकाला. एक तरफ से उन्होंने सहारा दिया, दूसरी तरफ से मेम साहब ने. बेबी ने ब्रीफकेश संभाला. सबके पैर लड़खड़ा रहे थे.

"मेरे पास शराब का स्टॉक नहीं है कल के लिए . . . और दिन भर रोना है." मिसेज चंद्रा ने अपना दुखड़ा सुनाया.

"सबेरे आ जायेगी." बड़ा बाबू ने आश्वासन दिया.

बेबी ने ताला खोला. काफिला अंदर प्रविष्ट हुआ. दोनों ने मिलकर चंद्रा साहब को पलंग पर डाला. चंद्रा साहब निढाल पड़ गये. मेमसाहब ने जूते उतार दिये. बड़ा बाबू ने श्रद्धावनत होकर पैर छुआ. बेबी ने ब्रीफकेस खोल दिया. तीनों कालीन पर बैठ गये. बड़ा बाबू नोटों को दो अलग-अलग जगहों पर विभक्त करने लगा.

"बेबी, बियर ले आओ." मिसेज चंद्रा ने बड़ा बाबू को प्रसन्न करने के लिए बियर का नाम लिया. बड़ा बाबू ने आंखें पसारकर मेमसाहब को देखा. फिर बेबी की तरफ मुखातिब होकर बोला, "भूख लगी है."

बेबी फुसफुसाकर बोली, "इस कमरे में नहीं."

"क्यों?"

"मुर्दा गंधा रहा है."

बड़ा बाबू ठहाका लगाकर हंसा. बेबी को बांहों में जकड़ कर बोला, "मुर्दा कहां है . . . एं, वो तो तुम्हारा बाप है. . . अपना फ्रांसीसी सेंट छिड़क दो थोड़ा-सा, गंध खत्म हो जायेगी."

मिसेज चंद्रा ने हंसी में साथ दिया. खिड़की खोल दी. चांदनी अंदर आ गयी. रुपयों पर बैठ गयी कमरा बेबीलोन बन गया. चांदनी चंद्रा साहब के पास गयी. चंद्रा साहब के मुर्दे ने चांदनी को चूमा. लच्छेदार अंग्रेजी में चांदनी को 'मिस इंडिया' घोषित किया. फिर चांदनी के लिए, इतिहास के लिए, बेबी के लिए, मिसेज चंद्रा के लिए अपनी मौत का होना स्वीकार कर लिया.

तब तक मिसेज चंद्रा रुपयों की गड्डी सहेजकर, बियर पीकर ताजा हो गयी थीं. रोने का रिहर्सल करने लगी थीं. बेबी एक दिन पहले मरे हुए बाप की मौत का शोक मनाने के लिए अपने कमरे में चली गयी. बड़ा बाबू उसके साथ था. ☐

● **इंटरनेशनल लेबर गुड्स कारपोरेशन, ग्राम-पोस्ट घोषी, जिला गया (बिहार)**

ईरान की एक लोककथा

उसका खजाना

ईरान का बादशाह शाह अब्बास शिकार खेलने निकला था. जंगल में वह रास्ता भूल गया और फिर उसे एक चरवाहा लड़का मिला, जो बांसुरी बजा रहा था. उसकी भेड़-बकरियां सामने चर रही थीं. शाह अब्बास ने उससे बातें कीं. लड़के के नपे-तुले जवाब सुनकर शाह अब्बास उसे अपने साथ ले आया. अपनी बांसुरी, थैला, चोगा और डंडा लेकर वह बादशाह के साथ हो लिया. फिर वक्त उस पर इतना मेहरबान हुआ कि वह अली बेग बन गया—बादशाह का सदर खजांची. और जैसा कि इस दुनिया का चलन है, बाकी के अमीर कुढ़कर रह गये. शाह अब्बास के जीते जी तो उनका दांव नहीं चल पाया, पर बादशाह के मरते ही उन्होंने नये बादशाह शाह सफी पर चुगली का जादू चलाया. उन्होंने बादशाह को बरगलाया कि बादशाह शाह अब्बास की पुरानी रत्नजड़ित तलवार मंगवायी जाये. इस तलवार को शाह अब्बास ने बहुत पहले ही ले लिया था और इसके हीरे जवाहरात निकलवाकर किसी अन्य जगह जड़वा दिये थे. चुगलखोर अमीरों ने नये बादशाह को भरा कि अली बेग ने अपना घर भर रखा है और इसके पास बेइंतहा दौलत है. शाह सफी कान का कच्चा था. उसने अली बेग को बुलवाकर कहा, 'तुम्हें मैं बरखास्त करता हूं. चौदह दिन के अंदर तुम सारा हिसाब सौंप दो.' अली बेग सिर झुकाकर बोला, 'मुझे मंजूर है आला हजरत, पर एक इल्तजा है कि आपकी और मेरी हाजिरी में हिसाब सौंपा जाये.' बादशाह मान गया. फिर अली बेग ने एक-एक चीज सही सलामत सौंप दी. चुगलखोरों के बहकावे में आकर अली बेग की हवेली की भी तलाशी ली गयी और वहां से भी कुछ नहीं निकला. लौटते वक्त बादशाह शाह सफी और कुटिल लोगों का ध्यान एक आलमारी पर गया, जिसमें ताला जड़ा हुआ था. बादशाह ने पूछा, 'इसे खोलो, इसमें क्या है?'

अली बेग सिर झुकाकर बोला, 'हजूर, इसे मत खोलिए. यह मेरा निजी खजाना है.' यह सुनकर सब अमीर बहुत खुश हुए और बादशाह से बोले, 'इसी में माल भरा है हजूर.'

अली बेग के इसरार को दरकिनार करते हुए बादशाह ने ताला तोड़ने का हुक्म दे दिया. और जब आलमारी खोली गयी तो उसमें निकला अली बेग का खजाना—वही बांसुरी, चोगा, थैला और डंडा. अली बेग सिर झुकाकर बोला, 'यही मेरा खजाना है हजूर, जो खुशियों से भरा है. बहुत पहले आपके वालिद मरहूम बादशाह शाह अब्बास ने मेरे ऊपर रहम किया और मुझे अपना दरबारी बनाया. मेरी आपसे दरख्वास्त है कि मुझे अपने खजाने के साथ चला जाने दिया जाये. उस जंगल में जो खुशी है, वह तड़कीले-भड़कीले दरबार में कहां.' ☐

▣ प्रस्तुति : बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

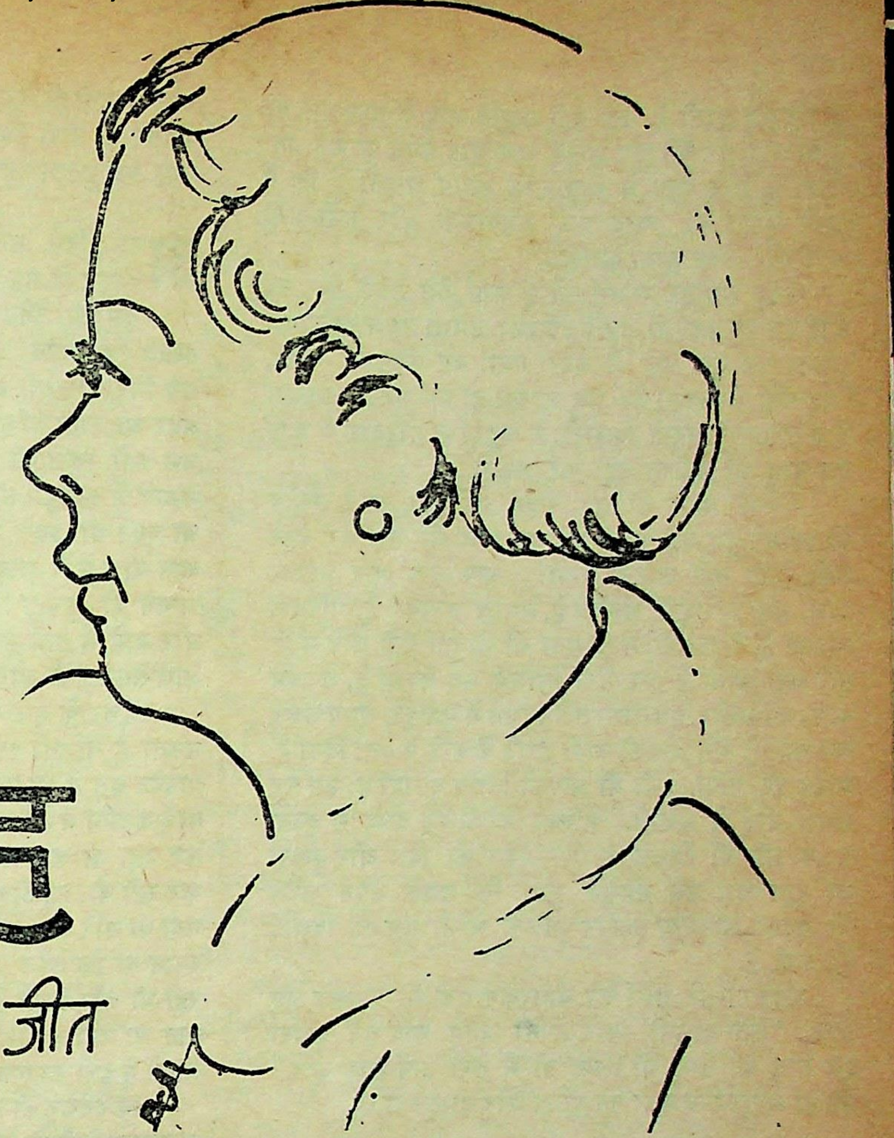

किशोर-वय के उन्माद और महत्वाकांक्षाओं से ओत-प्रोत मानस को एक किशोरी के द्वंद्व के माध्यम से अभिव्यक्त करती पंजाबी कहानी

विद्रोह

• गुरुमुख सिंह जीत

सोमवार. संध्या बेला. विंग कमांडर भाऊ रंगेकर गायत्री का जाप कर रहा था. उसने आंखें मूंदकर ध्यान ईश्वर की ओर लगा रखा था. शाम के छः ही बजे थे पर घुप्प अंधेरा छाया हुआ था.

विंग कमांडर रंगेकर पूजा समाप्त करने के बाद आफिसर्ज मस में जाया करता था जहां वह शाम को ड्रिंक अवश्य लेता था. यह उसकी दिनचर्या का अंग था. वह एक पायलट था और फाइटर विमान उड़ाया करता था.

रंगेकर को महसूस हुआ कि कोई उसके पास आ खड़ा हुआ है. उसने मुंदी हुई आंखों को खोला. उसने देखा कि उसकी बेटी नलिनीप्रभा सिर झुकाए उसके पास आ खड़ी हुई है. वह कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं पा रही. शब्द आ-आकर उसके गले में अटके जा रहे थे और उसके इरादे का साथ नहीं दे पा रहे थे. उसके चेहरे की गंभीरता को देखकर मां ने पूछा, "नलिनी बेटा. . . .क्या बात है? आज तू चुपचाप क्यों है?"

"मम्मी, तुम्हें पता तो है," कहकर कंधों को झटकते हुए नलिनी ने बात को टाल दिया. मिसेज दमयंती रंगेकर उस समय शाम का खाना बनाने में व्यस्त थी. उसने भी बेटी की तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया.

रंगेकर ने अपने मुंह पर हाथ फेरा और पूजा समाप्त करके उठ खड़ा हुआ. बेटी के कंधों पर हाथ रखकर मुस्कराते हुए बोला, "हाई नलिनी, माई डियर? आज क्या टीचर से लड़ाई हो गई है, कुट्टी करके आयी हो?"

"नो पापा नो, आप हर बात को मजाक में उड़ा देते हैं. कभी मेरी बात को समझने की कोशिश नहीं करते. अब मैं बच्ची थोड़े ही हूं कि इन बातों से बहल जाऊंगी."

"कम आन नलिनी, आज तुम कैसा व्यवहार कर रही हो? साफ-साफ बताओ, नहीं तो मेरी भी कुट्टी," रंगेकर ने आदतन खिलखिलाकर हंसते हुए कहा.

नलिनी जरा-सा हिली. ऐसा लगा जैसे वह साहस बटोर रही हो. उसके होंठ खुले और वह पापा की आंखों में देखते हुए कहने लगी, "मैं जानती हूं पापा, आप मेरी बात की खिल्ली उड़ायेंगे. मैं मम्मी को पहले भी कई बार कह चुकी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं. पर वह डरती हैं. पता नहीं उन्होंने आप के साथ बात की है या नहीं. पर मैंने खुद आपके साथ बात करने का मन बना लिया है और आप से साफ-साफ कहना चाहती हूं कि मैं अपने बालों को 'ब्वाय कट' करवाऊंगी और कभी-कभी जीन और अपर पहना करूंगी."

विंग कमांडर रंगेकर को यूं लगा जैसे उसके सिर पर कोई बम आ फटा हो. वह भड़क उठा. हमेशा प्रसन्न रहनेवाला उसका मन एक पल में बदल गया. वह कड़ककर बोला, "यह कैसे हो सकता है? तुम जानती हो हम मराठी ब्राह्मण हैं और हमारे पुराने विचारों के कट्टरपंथी परिवार में कोई इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता."

नलिनी पहले तो जरा सहम गई फिर अपने संकोच को त्यागते हुए बड़े धैर्य से एक-एक शब्द जैसे तौलकर कहने लगी, "यह नहीं जानती पापा! आप जानें और आपका काम. वह बिरादरी आपकी है, समाज आपका है, परिवार आपका है, मेरा नहीं. मैं तो पूना को जानती नहीं और न ही मुझे वहां जाना है. पर मेरा निश्चय अब पक्का है, एकदम पत्थर की लकीर. इस सीमा तक पहुंचने में मुझे कुछ समय जरूर लग गया है. मैंने आपको अपने इरादे के बारे में बता दिया है. माइंड इट, पापा, अभी भी आपको निर्णय बताया है. उस पर अमल बाद में करूंगी." नलिनी के प्रत्येक शब्द से दृढ़ता झलक रही थी जिसके कारण रंगेकर का दिल और दुखता जा रहा था. उसे महसूस हुआ कि उसके अपने चरित्र की दृढ़ता की एक लकीर नलिनी में भी उभरती दिखाई देने लगी है.

रंगेकर सारे तर्कों को बुहारकर एक ओर फेंकते हुए बोला, "देख नलिनी, प्यार अपनी जगह. यदि तूने दुबारा इस बात का नाम भी लिया तो मैं तेरी टांगें तोड़ दूंगा." उसकी आवाज में बला का गुस्सा और दो-टूकता थी.

पापा का ऐसा असामान्य स्वर सुनकर नलिनी रोने लगी. इतने में उसकी मां भी पति की जैट जैसी गरजती आवाज सुनकर उनके पास आ गयी थी. पति का यह रूप उसने पहली बार ही देखा था. यूं वह उसके क्रोधी लेकिन प्रायः शांत स्वभाव से परिचित थी.

नलिनी सुबकते हुए मां से कहने लगी, "मम्मी, मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूं कि डैडी से कहो मुझे अपने बाल 'ब्वाय कट' करवाने हैं. मेरी कई फ्रैंड्ज ने बाल कटवा लिए हैं और जीन्स पहनती हैं. यह लेटेस्ट फैशन है." कहते हुए उसकी आवाज कांपने लगी पर वह हिम्मत करके बोलती गयी, "जब मैं उनसे कहती हूं कि मेरे पापा नहीं मानते तो वे हमें बैकवर्ड कहती हैं. तुम बताओ, क्या मैं अपनी फैमिली की यह इंसल्ट सहन कर सकती हूं?"

दमयंती अपने पति के स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी और बेटी के स्वभाव का भी उसे पता था. इसलिए वह चुप रही और दोनों को शांत करने की कोशिश करने लगी.

नलिनी पापा से डांट खाकर अपने पलंग पर जा गिरी और कितनी ही देर तक सुबकती रही. उधर विंग कमांडर रंगेकर की सारी ईवनिंग खराब हो गई. वह मैस में भी नहीं गया. बस कुढ़ता रहा और ड्राइंग रूम में बैठा रहा.

अगला दिन, मंगलवार, शाम चार बजे. विंग कमांडर रंगेकर के घर में घबराहट फैलती जा रही थी. मिसेज दमयंती रंगेकर बार-बार दरवाजे से बाहर आकर देखती कि शायद अब नलिनी आ गयी हो. पर हर बार उसे निराशा होती और वह पहले से अधिक उदास होकर अंदर आ जाती लेकिन कुछ ही क्षण बाद फिर बाहर की ओर चल देती. स्कूल की बस आये एक घंटा हो गया था. साथ के मकान में स्क्वैड्रन लीडर नीरूरकर की लड़की मधु कब की आ चुकी थी. इतने में विंग कमांडर रंगेकर भी आफिस का काम बीच में ही छोड़कर आ गया था. उसे नलिनी के घर न पहुंचने की सूचना मिल गयी थी. वह घर में दायें से बायें और बायें से दायें तेज-तेज चल रहा था और उसकी सूखी आंखें तेनाली की ओर से आनेवाली सड़क पर लगी हुई थीं.

रंगेकर के मन में रह-रहकर विचार आ रहा था कि हो सकता है नलिनी स्कूल बस मिस कर गई हो और किसी प्राइवेट बस से आ रही हो. लेकिन इस विचार के कहीं बहुत नीचे अंतर्मन में उसे नलिनी का कल का वह दृढ़ चेहरा व्याकुल कर रहा था जब वह निश्चयपूर्वक और निर्णयजनक बात कर रही थी. यह ठीक है कि वह उसके पास से चुपचाप चली गयी थी और अपने पलंग पर लेटी रोती रही थी. उसे यह भी ध्यान था कि आज स्कूल जाते समय वह गुमसुम दिखाई दे रही थी और किसी से कोई बात नहीं कर रही थी. अब उसे याद आ रहा था कि उसने बस में चढ़ते समय नलिनी की आंखों में दूरी का एक गहरा अहसास चमकता हुआ देखा था.

अब रंगेकर की व्याकुलता और बढ़ गयी. वह घर आकर ताबड़तोड़ टेलीफोन घुमाने लगा पर उसे कोई भी नंबर नहीं मिल रहा था. टेलीफोन ही डैड पड़ा था. उसने रिसीवर को पटक दिया. फिर वह ग्रुप कैप्टन आहलूवालिया के घर की ओर चल दिया जो सड़क से दूसरी ओर कुछ ही दूरी पर था. उसके दिमाग में कई उलटे-सीधे विचार बड़ी तेजी से दौड़ने लगे थे. कई अनहोनियां और भयानक अनुभव उसे अधीर कर रहे थे. वह अनजाने ही हांफने लगा था.

रंगेकर से सहन नहीं हुआ और वह फूट-फूटकर रोने लगा. उसने आहलूवालिया को पूरी बात सुनाई और बताया कि नलिनी स्कूल से वापिस नहीं आयी. उसे कुछ हो न गया हो? हम बहुत वरीड हैं और हर जगह पूछ चुके हैं.

"चिंता मत करो," आहलूवालिया उसे ढांढस बंधाते हुए बोला, "चलो, मेरे साथ हम उसके स्कूल चलते हैं."

प्रिंसिपल मिसेज हजारिका का घर स्कूल के साथ ही था. नलिनी की एक क्लास वह खुद भी लिया करती थीं. वे दोनों बरामदे में बैठ गये और नौकर अंदर जाकर मिसेज हजारिका को बुला लाया. रंगेकर ने उसे सारी बात बताई. मिसेज हजारिका ने कहा, "नलिनी मेरी क्लास में जरूर थी, मैंने खुद उससे बात की थी. मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल पता नहीं चला कि उसके गंभीर चेहरे के नीचे कोई इस तरह की उथल-पुथल हो रही थी."

प्रिंसिपल के घर से निकलकर आहलूवालिया ने कार को फिर बाजार की तरफ मोड़ दिया. मोनिहारी स्टोर से गुजरकर उसने कान्वेंट के होस्टल के पास कार ला खड़ी की. रंगेकर को कोई सुध नहीं थी कि वे कहां गये हैं. रंगेकर को उसने बांह से पकड़कर कार से उतारा और वे आफिस में आ गये. चपरासी जाकर वार्डन मिसेज बरुआ को बुला लाया. इस बार बात आहलूवालिया ने की. सारी बात सुनकर मिसेज बरुआ उठकर खड़ी हुई. नलिनी उसकी स्टूडेंट थी और उसे बहुत चाहती थी. उसके चेहरे से पता लग रहा था कि रंगेकर की मानसिक पीड़ा ने उसे द्रवित किया है. उसने कहा, "मैं खुद अंदर जाकर मालूम करती हूं. आप बैठिए."

रंगेकर की आंखें दरवाजे की ओर टिकी हुई थीं. उसकी दृष्टि पूरा समय अंधेरे में भी मिसेज बरुआ का पीछा करती रहीं थी चाहे उसे दिखाई कुछ भी नहीं दिया था. उसे महसूस हुआ कि कोई आफिस की ओर आ रहा है. मिसेज बरुआ ही थी. उसकी चाल मद्धिम और चेहरा उत्साहहीन था. उसे देखकर रंगेकर पूरी तरह हताश हो गया. उसका चेहरा रक्तहीन हो गया था जिसमें से आशा की झलक भी लुप्त हो गयी थी.

मिसेज बरुआ उनके पास आकर चुपचाप बैठ गयी. दोनों में से किसी को भी कुछ पूछने का साहस न हुआ. आखिर मिसेज बरुआ के होंठ हिलते महसूस हुए और शब्द उसके मुंह से गिरने लगे. "नलिनी अपनी फ्रेंड प्रमील के कमरे में है...."

रंगेकर के उत्साहहीन चेहरे से मौत की काली परछाई क्षण भर में ही छूमंतर हो गयी. वह कुर्सी पर और आगे झुककर उसकी बात सुनने लगा.

"पर वह यहां आकर अपने पापा के साथ बात करने को तैयार नहीं. कहती है मेरे कोई डैडी नहीं. मैं किसी से मिलना नहीं चाहती." मिसेज बरुआ की बात समाप्त होते ही उसकी आंखों के सामने प्रश्नचिह्न लटक गया.

उन्होंने वार्डन से फिर अनुरोध किया कि वह नलिनी को समझाकर एक बार यहां आफिस में ले आयें. नलिनी ने फिर इनकार कर दिया और कहा कि वह डैडी से बात तक नहीं करना चाहती. इस पर रंगेकर ने आहलूवालिया से कहा कि वह खुद मिसेज बरुआ के साथ जाकर नलिनी को मनाकर ले आये. आहलूवालिया ने नलिनी को पुचकारकर कहा, "बेटे, तेरे मम्मी-डैडी बहुत वरीड हैं. तेरे पापा को तेरी चिंता के कारण पता नहीं क्या हो गया है. उनके मुंह से बात तक नहीं निकल रही. आ, एक बार उन्हें आफिस में मिल ले. उनकी तसल्ली हो जाएगी. फिर जो तू कहेगी, वह मान लेंगे."

"अंकल, उनसे कह दीजिए, मेरे कोई पेरेंट्स नहीं. मैं कहीं नहीं जाऊंगी," नलिनी ने बहुत दृढ़ स्वर में उत्तर दिया.

ग्रुप कैप्टन आहलूवालिया का कोई भी तर्क काम नहीं आया. नलिनी के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं हुआ. वह टस से मस नहीं हुई. पापा से मिलने से लगातार इनकार करती रही. "अंकल, अगर आप ज्यादा मजबूर करेंगे तो मुझे कभी भी नहीं देख सकेंगे," नलिनी ने दो-टूक कहा. उसकी सूखी और वीरान आंखों से गहरी उदासी झांक रही थी.

वापिस आफिस जाने के लिए मुड़ते समय आहलूवालिया ने एक बार फिर कोशिश की, "आ जा बेटी, तू कितनी अच्छी है!"

नलिनी बिना पलकें झपकाए बोली, "अंकल, डैडी से कह दीजिए, वापिस चले जायें. आज फिर घर लौटकर मैं बहस को नये सिरे से शुरू करना नहीं चाहती. मैं कल स्कूल के बाद बस में आ जाऊंगी."

बुधवार, दोपहर के तीन बजे. मिसेज दमयंती अपने बरामदे में बेंत की कुर्सी की पीठ के सहारे खड़ी थी. उसकी नजरें सड़क के मोड़ से चिपकी हुई थीं. विंग कमांडर रंगेकर आफिस से जल्दी आ गया था और ड्राइंग रूम के एक सिरे से दूसरे तक तेज-तेज चल रहा था. वह कई बार सोफे से टकराते-टकराते बचा और संभल गया. इतने में मिसेज रंगेकर ने देखा कि कान्वेंट की बस आ गयी है और उनके घर से कोई पचास गज दूर अपने स्टाप पर रुकी है. उसने आंखों को झपकाया, बंद किया, फिर से खोला. उसे अपने आप पर विश्वास नहीं आया. जब उसने नलिनी को बस से उतरकर घर की ओर आते हुए देखा.

नलिनी मां की ओर देखकर मुस्कराई. फिर हंसने की कोशिश करने लगी जैसे अपनी किसी कमजोरी को छिपाने का यत्न कर रही हो. उसकी नजर ड्राइंग रूम में तेज-तेज चलते पापा पर पड़ गई. उसकी सांस जैसे रुक-सी गई और कदम वहीं के वहीं जम गये. मिसेज रंगेकर बेटी की ओर जरा-सा आगे बढ़ीं. एक मजबूर मुस्कराहट की परछाई नलिनी के चेहरे पर आकर गायब हो गयी. विंग कमांडर रंगेकर सिर नीचा किये दरवाजे की ओर बढ़ा. उसके भीतर कोई भीषण संघर्ष हो रहा था. नलिनी के मां की ओर बढ़ते कदम जड़ हो गये और उसके चेहरे का रंग राख की ढेरी के समान हो गया, हालांकि उसके होंठ कड़वी मुस्कराहट में हिलते प्रतीत हुए. मिसेज रंगेकर ने आगे बढ़कर नलिनी को बांहों में ले लिया. नलिनी जोर-जोर से रोने लगी. विंग कमांडर रंगेकर उसकी ओर पगलाई आंखों से देखने लगा. नलिनी आकर उसकी टांगों से चिपट गयी और ऊंचे स्वर में सुबकने लगी. उसने प्यार से नलिनी को अलग किया. फिर एक गहरी सांस ली और धीरे-धीरे हवा को बाहर निकालने लगा.

नलिनी ने हाथों से अपने 'ब्वाय कट' बालों को ठीक किया, जीन को पकड़कर ऊंचा किया और ऊपर की सलवटें निकालने लगी. उसका चेहरा आंसुओं से भीगा हुआ था. वह हिचकियां ले रही थी. मिसेज रंगेकर कितनी ही देर तक चुपचाप उसके सिर को सहलाती रहीं. □

● 82, हेमकुंट, नयी दिल्ली-110048

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला महीना

• भीमसेन त्यागी

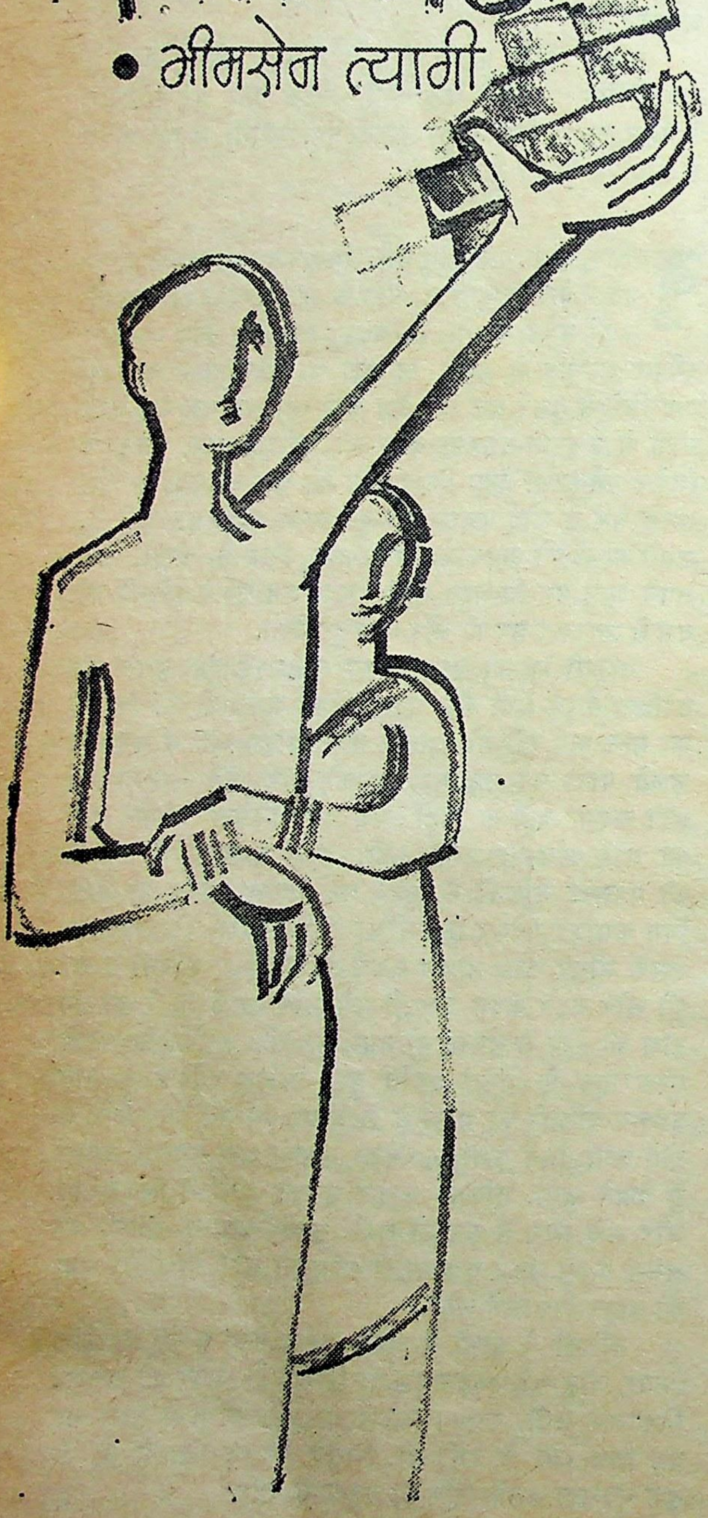

रविवार है. सतीश देर तक सोया पड़ा रहा. सरला ने भी नहीं उठाया. हफ्ते में एक दिन तो मिलता है—आराम के लिए.

सतीश की आंख खुली तो आज वह और भी ज्यादा थका हुआ था. रोज सरला हिला-डुलाकर उठाती तो आंख खुलने से पहले ही दफ्तर का भूत सवार हो जाता. लेकिन आज तो किसी साले की नौकरी पर नहीं जाना. मजे से सोयेंगे. लेकिन मजा कहां? पूरे शरीर में तो थकान जमी है. कैसी थकान है यह! इस जिंदगी में तो उतरेगी नहीं!

सतीश यंग इंडिया एंटरप्राइज में टाइपिस्ट है. हर महीने प्राविडेंट फंड, बीमा, मेडिकल और बहन की शादी में लिये कर्ज की किस्त कट-कटाकर जो कुछ आता है, उससे मकान का किराया, बिजली-पानी, बच्चों की फीस, अखबार और दूध के बिल चुकाकर मुश्किल से सौ-सवा सौ हाथ में बचते हैं. ऊपर से किसी न किसी का लेना-देना और सामने पूरा महीना खड़ा दिखायी देता है.

इस महीने से लड़ने के लिए सतीश शाम को दफ्तर के बाद दारूवाला एंड कंपनी में दो घंटे टाइप करता है. लेकिन महीने का पेट फिर भी नहीं भर पाता. आखिरी दिनों में किसी दोस्त या पड़ोसी को सताना पड़ता है.

"अब तो उठो!" सरला ने आग्रह किया, "दोपहर में फिर सो लेना."

"क्या सो लेना!" जिस्म के पुर्जों को चटखाता हुआ सतीश उठा और उसने बेमन से प्याला थाम लिया.

सरला वासप मुड़ गयी.

सतीश ने चाय का पहला घूंट भरा और कसैली आवाज में बोला, "भई, सुनो!"

"हूं!"

"यह चाय है या जुशांदा?"

"क्यों?"

"फलेवर तो कतई नहीं."

"रेखा ने बनायी है!"

"खाक बनायी है!" सतीश ने कहा और धीरे-धीरे जुशांदे के घूंट भरने लगा.

सरला को मालूम है कि आज चाय ऐसी क्यों बनी है. चाय की पत्ती कल खत्म हो गयी थी. और पैसे तो कई दिन से खत्म हैं. बच्चों की गुल्लक में से पच्चीस पैसे निकालकर खुली चाय मंगायी और खुली चाय से तो जुशांदा ही बनता है!

चाय के बाद सतीश बाथरूम में घुस गया. फारिग होकर लौटा तो नाश्ता तैयार था. नाश्ते के बाद वह फिर बिस्तर में सरक गया.

कुछ देर बाद सरला आ खड़ी हुई, "चलो, नहाने का पानी तैयार है!"

"भई, तुमने तो दुखी कर मारा. इससे तो अच्छा है साली छुट्टी हुआ ही न करे!"

"लो, हफ्ते में एक दिन तो मिलता है. उस दिन भी मत नहाया करो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठना पड़ा.

नहाने से पहले सतीश के मन पर एक अजीब किस्म की दहशत छायी थी. लेकिन पानी खूब गर्म था. मजा आ गया.

सरला ने आज बहुत मन से गोभी के परांठे बनाये थे. सतीश को पसंद हैं न.

खाने के बाद सरला ने रसोई का काम निबटाया. और कमरे में आ गयी.

सतीश बिस्तर में लेटा एक पुरानी फिल्म पत्रिका के पन्ने पलट रहा था. उसने पत्रिका रख दी. एक तरफ खिसककर सरला के लिए जगह बनायी.

बच्चे जुनेजा के यहां खेलने गये थे. सतीश और सरला ने सुख अनुभव किया. मिसेज जुनेजा के कमीनेपन की चर्चा शुरू हुई तो सुख और बढ़ गया.

चर्चा घूमकर अपने घर पर आ गयी. सतीश हर महीने बजट बनाता है. ऐसा बजट जिसके मुताबिक पूरा का पूरा महीना आराम से खिंच जाए. लेकिन हर महीने कुछ न कुछ ऐसा हो जाता है, जिसका पहले से कतई गुमान नहीं होता. कभी कोई बच्चा बीमार हो जाता तो कभी मेहमान आकर

सरला ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हें तो भारत सरकार का वित्त मंत्री बनाया जाना चाहिए."

सतीश ने इस तरफ कतई ध्यान नहीं दिया कि उसकी पत्नी अपने पति को लेकर कैसी-कैसी महत्त्वाकांक्षाएं मन में पाले है. वह किसी तरह बजट पर काबू पाने के बारे में सोचता रहा.

अचानक सीढ़ियों पर धम्म-धम्म की आवाज सुनायी दी. आवाज के पीछे-पीछे तीनों लड़कियां कुलांचे भरती आ खड़ी हुईं. वे खिलखिलाकर हंस रही थीं. शायद कोई चुटकुला हाथ लग गया हो.

उनकी हंसी सम पर आयी तो सीमा ने सरला के गले में बाहें डाल दीं और उचककर उसकी गोद में बैठ गयी.

"अरे! इतनी बड़ी हो गयी फिर भी. . ."

"बड़ी कहां मम्मी, छोटी-सी तो हैं. मुनिया." सीमा का भोला चेहरा और भी भोला लगने लगा.

सरला ने उसके गाल पर मीठी चपत लगा दी.

सीमा ने चहककर कहा, "मम्मी, आज टी. वी. पर बहुत अच्छी फिल्म आ रही है."

सतीश हर महीने बजट बनाता है. ऐसा बजट जिसके मुताबिक पूरा का पूरा महीना आराम से खिंच जाए. लेकिन हर महीने कुछ न कुछ ऐसा हो जाता है जिसका पहले से कतई गुमान नहीं होता है. . . आखिर वे कौन से हालात हैं जिनका हम अंदाजा तक नहीं लगा पाते और वे हठात हमारी तमाम मोर्चाबंदी को नेस्तनाबूद कर हमें अपने मन-मुताबिक जीने तक नहीं देते . . . निम्न मध्य वर्ग की विषमताओं, आशा-आकांक्षाओं को रेखांकित करती एक सरल रचना––

जम जाता या फिर ऐन वक्त पर कोई ऐसी चीज खरीदनी पड़ जाती, जिसके बिना काम चले ही नहीं. यह नहीं कि सतीश ऐसे मदों के लिए बजट में गुंजाइश न रखता हो. गुंजाइश तो वह रखता है लेकिन होता यह है कि उसने दवा-खर्च के लिए रखे तो दस रुपये और बच्चे की बीमारी पर खर्च हो गये पचास! बताओ चालीस कहां से आयें?

सतीश उन चालीस को अगले महीने में डाल देता है और फिर उससे अगले महीने में. किसी महीने उन चालीस में पचास-साठ और जुड़ जाते हैं और जुड़ते चले जाते हैं.

पता नहीं क्या हो रहा है कि वह हर महीने एक न एक खर्च घटाता है, फिर भी अगले महीने बजट और तंग हो जाता है. एक जमाना था कि वे डेढ़ किलो दूध लेते थे. बच्चों को मिल जाता था और सरला जबरदस्ती करके थोड़ा सतीश को भी दे देती थी. पिछले साल दूध घटाकर एक किलो करना पड़ा और अब तो कुल आधा किलो रह गया है. वही चाय में उड़ जाता है.

सतीश बजट बनाने में माहिर है. वह घर के बढ़ते हुए खर्च और आमदनी की सीमित चादर को खींचतानकर एक दूसरे से ढक देता है. लेकिन आज वह बजट बनाने बैठा तो पूरी खींचतान के बावजूद साठ रुपये का घाटा रह गया.

तभी पूनम बोल उठी, "हां, मम्मी, आप भी चलना."

"नहीं, तुम लोग चले जाना."

"क्यों? हम तो आप को भी ले चलेंगे!"

"नहीं, तुम नहीं समझते बेटे, रोज-रोज दूसरों के यहां जाना अच्छा नहीं लगता."

"तो आप टी. वी. क्यों नहीं ले लेतीं!" सीमा ने तुनककर कहा, "नीरा के घर आ गया है और अब संजू के यहां भी आनेवाला है."

"लायेंगे बेटे, हम भी लायेंगे."

"कहां लायेंगे! हम जब भी कहते हैं, ऐसे ही टाल देती हो."

"नहीं, अब नहीं टालेंगे. जल्दी ही ले आयेंगे."

तीनों बच्चियां खुश हो गयीं और सरला एकदम उदास. वह बच्चों का मन नहीं तोड़ना चाहती. वे जब भी जिद करते हैं तो सरला झूठा वादा करके बहला देती है.

चहचहाती बच्चियां खेलने के लिए ऊपर छत पर चली गयीं.

सरला और सतीश फिर अकेले रह गये. अकेले और चुप.

कुछ देर बाद सतीश ने कहा, "तुमने स्वेटर क्यों नहीं पहना?"

सरला ने गरदन झुका ली.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

▣ अदम गोंडवी

भूख के अहसास को शेरो सुखन तक ले चलो,
या अदब को मुफलिसों के अंजुमन तक ले चलो.

जो गजल माशूक के जल्वों से वाकिफ हो गयी,
उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो.

मुझको नज्मों जब्त की तालीम देना बाद में,
पहले अपने रहबरी को आचरन तक ले चलो.

खुद को जख्मी कर रहे हैं गैर के धोके में लोग,
इस शहर को रौशनी के बांकपन तक ले चलो.

"पता है, आज कितनी ठंड है! मरने का इरादा है क्या?"

सरला फिर भी चुप रही.

"हम बके जा रहे हैं और मेम साहब पत्थर बनी बैठी हैं!" सतीश झुंझला उठा, "मैं कहता हूं—उठो, स्वेटर पहनो!"

"स्वेटर तो धो रखा है." सरला ने धीमी आवाज में कहा.

अब सतीश के पास कहने को कुछ न था. उसे मालूम है कि सरला के पास पुरानी ऊन का एक ही स्वेटर है!

सरला उठकर बाहर चली गयी. उसने धूप में सूखने के लिए डाले गये कपड़ों को पलटा, शाम के खाने के के लिए दाल भिगोयी और फिर कमरे में आ गयी.

सतीश ने उतावले स्वर में कहा, "मैं एक बात सोच रहा हूं."

"क्या?"

"ऐसे काम नहीं चलेगा. मैं एक जगह और पार्ट टाइम काम देख लेता हूं."

सरला की उदासी झुंझलाहट में बदल गयी, "पहले ही क्या कम काम करना पड़ता है तुम्हें! दिन भर दफ्तर में खटते हो और फिर पार्ट टाइम. अब एक और सर पर लाद लो!"

"क्या करें भई, गृहस्थी चलानी है तो यह सब करना ही होगा."

"करने की कोई हद भी हो. आखिर मरना है क्या?"

"मरना तो दोनों सूरत में है. एक और पार्ट टाइम नहीं करूंगा तो घर कैसे चलेगा?"

"सब चल जाएगा."

"आखिर चल कैसे जाएगा?"

"सीजन चल रहा है." सरला ने कहा, "मैं महीने में चार-पांच स्वेटर और निकाल दिया करूंगी."

"स्वेटर?" सतीश के सोच का जायका बिगड़ने लगा—नहीं, यह नहीं हो सकता. सरला पर काम का और बोझ पड़ा तो वह कतई मर मिटेगी. इतना काम और खाने को कुछ मिलता नहीं. पहले ही हड्डियां निकल आयी हैं.

"नहीं सरला, ऐसे नहीं चलेगा." सतीश ने थकी हुई आवाज में कहा, "मैं एक और पार्ट टाइम काम पकड़ लेता हूं."

"पागल हुए हो!" सरला की भवें चढ़ गयीं, "आखिर इंसान हो, मशीन तो नहीं!"

"मशीन और कैसी होती है?" सतीश ने ठंडे स्वर में कहा, "दिन भर यहां से वहां भागता रहता हूं. तुमसे और बच्चों से बात करने का वक्त भी नहीं मिल पाता."

"मेरी चिंता तुम मत करो." सरला एकदम गंभीर हो गयी, "हां, बच्चे तुम्हें मिस बहुत करते हैं. सुबह उनके उठने से पहले चले जाते हो और रात को सोने के बाद लौटते हो! तुम्हारी शक्ल देखे भी कई-कई दिन हो जाते हैं."

"तुम उन्हें बहलाने की कोशिश किया करो!"

"वह तो करती ही हूं लेकिन मैं 'पापा' कहां तक बनूं?"

सतीश का स्वर भारी हो गया, "सरला, क्या जिंदगी है हमारी भी!"

"नहीं, तुम मन छोटा मत करो. आखिर तुम दिन भर किसके लिए खटते हो! मेरे और बच्चों के लिए ही तो!" सरला की बड़ी-बड़ी आंखें और बड़ी लगने लगीं. वह बोली, "तुम घबराते क्यों हो! दो-तीन दिन में स्वेटर पूरा हो जाता है. महीने में दस भी बुनूंगी तो सौ-सवा सौ आयेंगे."

सतीश ने कलम उठाया और बजट के आंकड़े नये सिरे से जमाये. वह उत्साह में भरकर बोला, "लो सरला, अब हमें कोई चिंता नहीं. बजट ठीक हो गया."

"ठीक तो हो ही जाना था. तुम तो बिना वजह घबराने लगते हो!" सरला ने उठते हुए कहा, "अब मैं चलूं. खाना बनाना है."

सरला के जाने के बाद सतीश देर तक नये बजट के आंकड़ों के साथ खेलता रहा.

शाम को उन दोनों ने साथ बैठकर तसल्ली के साथ गर्म-गर्म खाना खाया और भविष्य में आने वाले अच्छे दिनों के बारे में बातें करते रहे!

सतीश बहुत उत्साह में था. उसने कहा, "अगले महीने मैं तुम्हारे लिए एक अच्छी-सी साड़ी लाऊंगा."

"नहीं, पहले तुम्हारा कोट बनेगा."

"नहीं, पहले तुम्हारी साड़ी."

"छोड़ो, हम दोनों बाद में बनवा लेंगे, पहले तो बच्चों के कपड़े बनने हैं."

"बन जाएंगे वे भी." सतीश ने जोरदार आश्वासन दिया. "तुम फिक्र न करो. अगले महीने सब ठीक हो जाएगा."

सरला को लगा जैसे वह किसी घिसे हुए रिकार्ड को सुन रही है. पिछले महीने सतीश ने ठीक यही शब्द कहे थे और उससे पिछले महीने भी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम पते सहित, 31 दिसंबर, 1984 तक, इस पते पर भेज दें : **संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 370) 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमशः 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित **'तस्वीर बोलती है'** बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

छाया : एन. के. सरीन, 29/1 अनारकली मेन, दिल्ली-110051.

CC-0. In Public Domain...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोध...
जिससे कि आप दूसरा बच्चा आने से पहले, अपने एक बच्चे की जरूरतें पूरी कर सकें

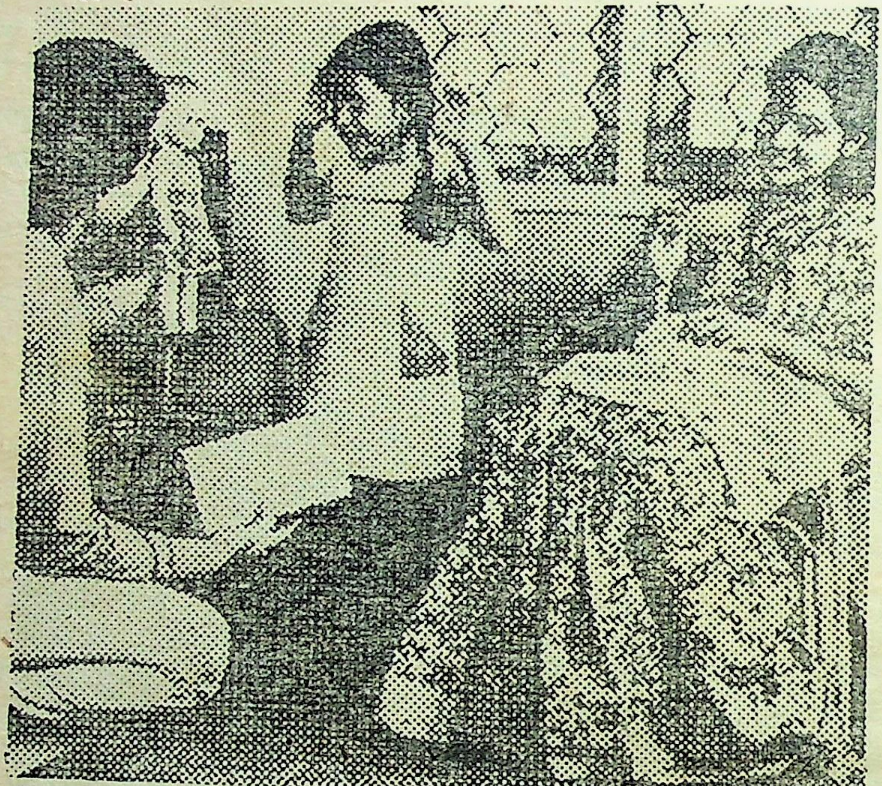

आपके बच्चे को अच्छे पालन-पोषण, प्यार, देखभाल तथा पूरे ध्यान की विशेष जरूरत रहती है। इनमें से बहुत सी बातें पैसे से ही पूरी होती हैं। जब तक आप अपने पहले बच्चे की जरूरतें पूरी न कर लें तब तक दूसरा बच्चा लाने की न सोचें। और इसमें निरोध आपकी सहायता करता है।

सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक जीवन के लिए—
निरोध का प्रयोग कीजिये

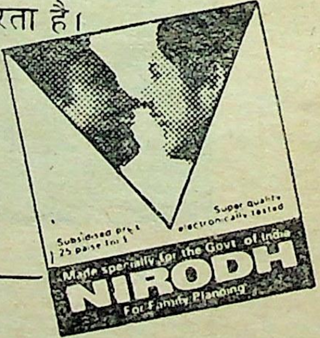

वितरक : ब्रुक बॉण्ड लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर
आई टी सी, टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आईडीपीएल, स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और आरासन मैच इण्डस्ट्रीज़

davp 84/44

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

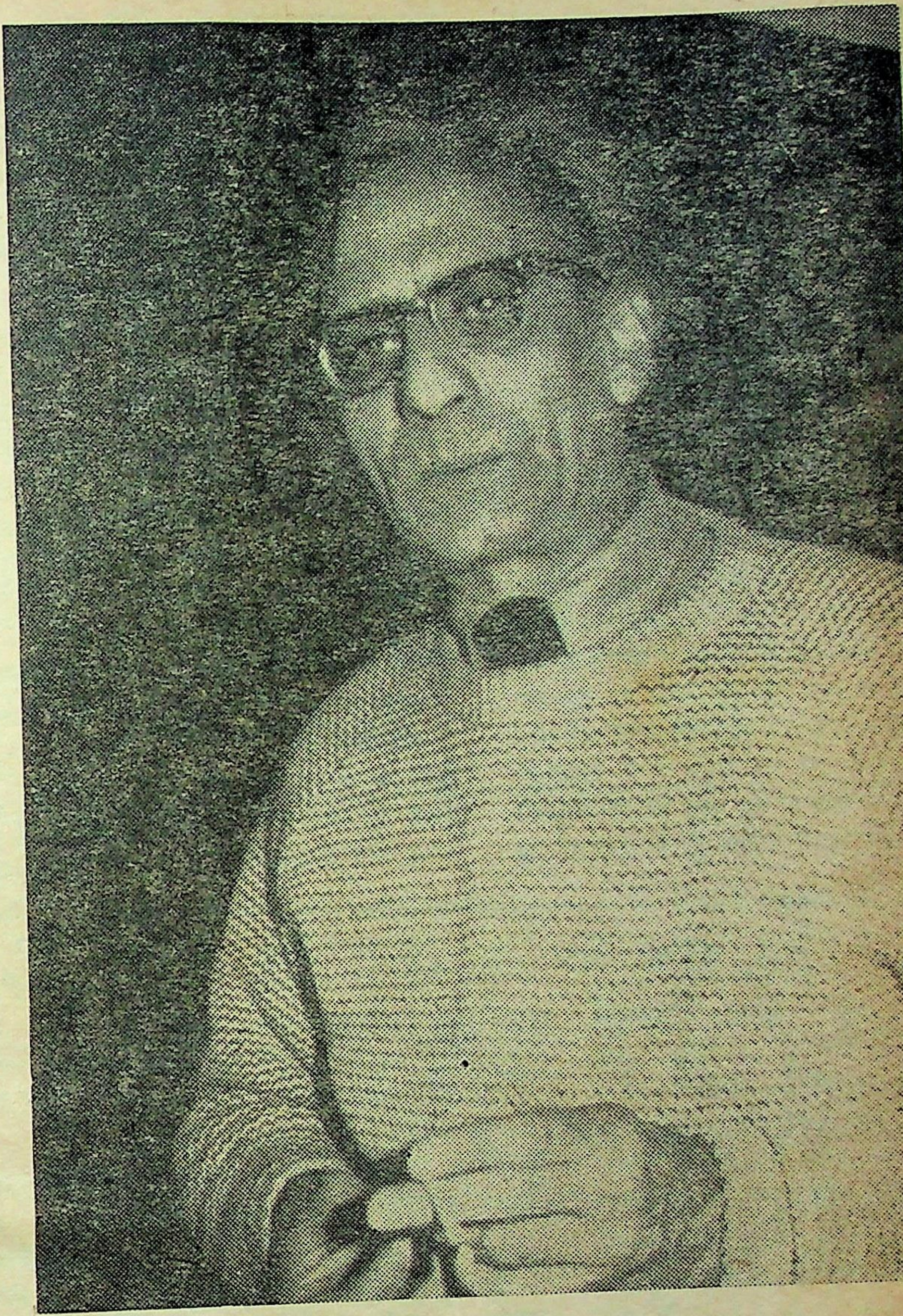

कृष्ण बलदेव वैद को यूं तो पारंपरिक हिंदी उपन्यासों में यथार्थवादी सोच की जकड़ दिखाई देती है पर अपने बारे में वे कहते हैं. . . कि मुझे यह कोशिश करनी चाहिए कि लेखन में 'फार्म' और 'स्टाइल' पर अपनी मेहनत को सामने रखूं. . . साथ ही वे मूल्य भी जिन्हें मैं बतौर प्रयोग अपने लेखन में जोड़ता हूं. अक्सर होता यह है कि मैं वही नहीं लिखता जो मैं लिख सकता हूं. . . **कृष्ण बलदेव वैद से ए. के. मित्तल** की बातचीत

साक्षात्कार

भारत में गरीबी एक प्रमुख समस्या है जिससे बचकर नहीं लिखा जा सकता

आपके उपन्यास 'फार्म' की दृष्टि से प्रेमचंद के उत्कृष्ट उपन्यासों से कहां अलग हैं?

मैं समझता हूं कि दूसरे लेखकों के उपन्यासों पर केंद्रित होने की बजाय मुझे यह कोशिश करनी चाहिए कि लेखन में 'फार्म' और 'स्टाइल' पर अपनी मेहनत को सामने रखूं. . . साथ ही वे मूल्य भी जिन्हें मैं बतौर प्रयोग अपने लेखन में जोड़ता हूं. अक्सर यह होता है कि मैं वही नहीं लिखता जो मैं लिख सकता हूं. . . कोशिश यही रहती है कि जो मैं नहीं कर सकता, वही करूं.

पारंपरिक हिंदी उपन्यास, मुझे यथार्थवादी सोच में बुरी तरह जकड़े हुए नजर आये. . . साथ ही 'स्टाइल' को लेकर उनमें एक चौंकाने वाली लापरवाही नजर आयी. ये लेखक सोचते हैं कि 'स्टाइल' कोई भोग-विलास या ऐश्वर्य की चीज है. वे सोचते हैं कि 'कंटेंट' 'स्टाइल' से ज्यादा महत्वपूर्ण है. . . या 'कथ्य' 'माध्यम' से ज्यादा महत्व रखता है. दरअसल, इस तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोच का सबसे बड़ा कारण है हमारे देश की वस्तुस्थिति, जीवन और समस्यायें. . . जो दूसरे देशों से भिन्न हैं. हमारे लिए सबसे उपयुक्त 'फॉर्म' यथार्थवादी ही है. . . जिसमें समाज के साथ जद्दो-जेहद करते हुए 'करेक्टर' नजर आयें. इस तरह के पारंपरिक उपन्यास समाज के मजबूत तबकों की कमजोर तबकों के साथ होने वाली जद्दोजहद दिखाते हैं. . . मैं यह सब पढ़ गया हूं और इस तरह की राइटिंग करने वालों के प्रति मुझमें आदर भाव भी है. भारतीय स्थितियों के प्रति आंखें मूंदे रखना मुझे भी नापसंद है. उदाहरण के लिए भारत में गरीबी एक प्रमुख समस्या है जिससे बचकर नहीं लिखा जा सकता. किसी भी लेखक को इसका सामना करना जरूरी है. . . पर उपन्यास लेखन एक कला भी है. . . और यह मैं भूलना नहीं चाहता. मैं उस काम को दुहराना नहीं चाहता जो मुझसे पहले ही कई लोग कर चुके हों. इस संदर्भ में मैं अपने ही देश के लेखकों का नहीं विदेशी लेखकों का भी ध्यान रखता हूं. मैं हरदम कुछ न कुछ एकदम नया करते रहने का खतरा उठाए रखना चाहता हूं. बात यह है कि मैं यह सोचकर लिखने नहीं बैठ सकता कि **प्रेमचंद** से पहले या बाद में कुछ हुआ ही नहीं. मैं इन तमाम चीजों के प्रति सचेत हूं और यही चीज मेरे दिमाग में लिखते वक्त भी बनी रहती है. मैं पुरानी चीज को दुहराना नहीं चाहता. और यह भी जानता हूं कि कहीं न कहीं दुहरा ही रहा हूं. . . पर करना मैं कुछ न कुछ नया ही चाहता हूं.

मैं अपने उपन्यासों के रूप और बुनावट से ही ज्यादा जुड़ा हूं. यह बात जाने दीजिए कि मैं सफल हुआ हूं या असफल. यूं भी, मैं अपनी सफलता और असफलता खुद नहीं समझ पाता. औसत भारतीय उपन्यास अनगढ़ संबंधों पर अनगढ़ तरीके से लिखे गए हैं. पता नहीं मैंने भी नई जमीन तैयार की है या नहीं!

अपने आलोचकों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

हिंदी में आलोचना की स्थिति बहुत दुखद है. अधिकांश हिंदी प्राध्यापक अपने आप में अज्ञानी होते हुए भी खुद

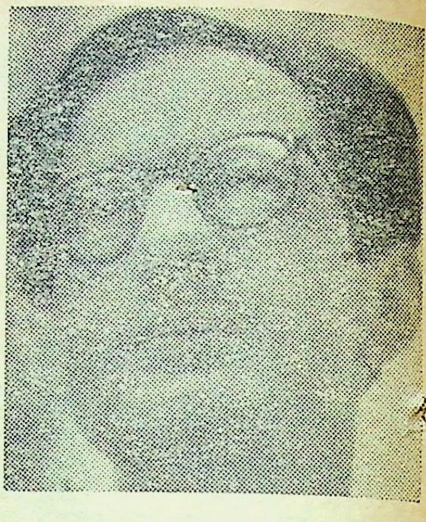

● 'फॉर्म' एक महत्वपूर्ण अंग है

को महान समझते हैं. वे लेखन में इतनी रुचि नहीं लेते जितनी पाठ्य-पुस्तकों के फार्मूले में. . . जबकि आलोचना को विश्वविद्यालयों में पनपना चाहिए था. आलोचनाएं बेहद कमजोर होती हैं. . . हो सकता है इसकी वजह उन्हें (आलोचकों को) मिलने वाला बहुत कम पैसा हो. . . मेरी आलोचना के संदर्भ में, थोड़ा-बहुत जो कुछ मैं जान सका हूं. . या तो लेखक को बेकार साबित करती हैं या फिर खामोशी साध ली गयी है.

क्या आप नहीं सोचते कि 'कंटेंट' की अपेक्षा आपने 'फॉर्म' पर ज्यादा जोर दिया है?

मैं सोचता हूं कि 'फॉर्म' एक महत्वपूर्ण अंग है लेखन का. और कोई भी यह बात स्वीकार कर सकता है कि 'कंटेंट' और 'फॉर्म' को अलग-अलग नहीं किया जा सकता. यह सच है कि कुछ परिस्थितयां बुरी तरह मेरे भीतर घर कर जाती हैं और मैं उन्हें पूरी तरह इस्तेमाल कर लेना चाहता हूं. मैं सोचता हूं कि थीम को पूरी तरह से इस्तेमाल करूं. . . अलगाव, एकाकीपन, मृत्यु और तमाम दूसरी चीजें भी. . .

मैं समझता हूं कि एक लेखक को 'टाइप' कर देना ठीक नहीं है. जिन्हें **उसका बचपन** पसंद आया है वे चाहते होंगे कि मैं ऐसे पांच उपन्यास और लिखूं. लेकिन मैं नहीं करूंगा ऐसा. मेरे छः उपन्यासों में निरंतरता के बावजूद

कुछ बातें अंत तक हमारा पीछा करते रहते हैं, कुछ पीड़ाएं अंत तक हमारा खून और चैन चूसती रहती हैं। 'वह और मैं' ऐसे ही एक ज़िद्दी और अजीब बात से पीछा छुड़ाने की, ऐसी ही एक ज़ालिम और अजीब पीड़ा को शांत करने की, एक और नाकाम कोशिश है। इसी किस्म की कोशिशें पहले 'मेरा दुश्मन', 'मेरा क्या होगा!', 'लापता', 'उसके बयान', 'वह मैं हम', 'बाद मरने के मेरे', "रात की सैर", "रात की चीर फाड़" आदि कई कृतियों में कर चुका हूं। और अंत से पहले इसी किस्म की कई कोशिशें शायद और भी करूंगा — यह जानते हुए भी कि इन सब में नाकाम रहा हूं, कि उन सब में नाकाम रहूंगा।

कृष्ण बलदेव वैद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई समरूपता नहीं है. वे सभी अलग-अलग हैं. . . और मेरे हैं.

साहित्य-जगत में कुछ वर्गों में यह मान्यता है कि भारतीय अच्छी अंग्रेजी नहीं लिख पाते क्योंकि यह एक विदेशी भाषा है. आप इस कथन से कहां तक सहमत हैं कि भारतीय अंग्रेजी लेखक जो कहना चाहते हैं, वह कह नहीं पाते.

मैं सोचता हूं कि समस्या इससे कुछ हटकर है. मैं कहूंगा कि सौ में से करीब निन्यानवे प्रतिशत लेखक अपनी अपनी भाषाओं में ही लिखते हैं, उन्हें लिखना भी चाहिए. और मैं इस बात से भी पूरी तरह सहमत हूं कि अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है. और मैं अब भी समझता हूं कि अधिकांश भारतीय अंग्रेजी लेखकों को लेकर आपकी बात सही है.

अपने आपको आप भारतीय अंग्रेजी लेखक मानते हैं या हिंदी लेखक. . . या दोनों ही!

मैं एक हिंदी लेखक हूं और खुद ही अपना अनुवादक भी. अंग्रेजी में मेरा जितना भी प्रकाशित कथा-साहित्य है सभी मेरे द्वारा हिंदी से अनूदित है. यह भी सच है कि मैंने कथेतर लेखन भी किया है. . . व्यंग्यात्मक निबंध, समीक्षा, रेडियो-समीक्षाएं आदि. . . और यह सभी सीधे अंग्रेजी में किये हैं. पर इनका मेरे 'लेखक' से सीधा कोई रिश्ता नहीं है.

आप अंग्रेजी में कथा-रचना क्यों नहीं करते?

मुझे लगता है कि मैं सर्वश्रेष्ठ लेखन हिंदी में ही कर सकता हूं. मैं अपने पाठक को कोई सचेत छूट नहीं देता. . . जब मैं हिंदी में लिखता हूं. मैं वही लिखता हूं जो मुझे लिखना होता है. जबकि मैं समझता हूं कि भारतीय अंग्रेजी लेखक अपने पाठकों के प्रति सचेत होकर लिखता है. यह चीज उसके लेखन पर असर छोड़ती है.

आप भारतीय अंग्रेजी लेखक में किन विशेषताओं की अपेक्षा रखते हैं?

एक समय था जब कोई भी भारतीय लेखक प्रथम श्रेणी का कथा या काव्य-लेखन नहीं कर सकता था. मैं अब भी सोचता हूं कि हमने अब तक कोई

● **समस्या इससे कुछ हटकर है**

भी भारतीय अंग्रेजी लेखक **कॉनरेड, नोबोकोव या बेकेट** के स्तर का पैदा नहीं किया. यह उदाहरण मैंने इसलिए दिये हैं क्योंकि ये रचनाकार अपनी भाषाएं छोड़कर दूसरी भाषाओं में रचना करते रहे हैं. फिर भी मैं सोचता हूं कि कुछ भारतीय अंग्रेजी कवि स्तरीय हैं—**रामानुजन, जयंत महापात्र** आदि. तीन प्रतिष्ठित उपन्यासकार भी हैं—**राजा-राव, आर. के. नारायण** और **मुल्क-राज आनंद**. पर अधिकांश भारतीय अंग्रेजी कवि-कथाकारों की स्थिति बहुत कमजोर है.

आपका उपन्यास 'गुजरा हुआ जमाना' क्या आत्मकथात्मक है?

नहीं, वास्तव में नहीं है. मैं भावुकता-वादी नहीं हूं. भारतीय लेखन में 'भावुकतावाद' एक बहुत घटिया चीज है. यूं तो मुझे यकीन है कि मेरे लेखन में भी कोई न कोई भावुकतावाद खोज ही निकालेगा पर मैंने इसे भरसक 'अवाइड' करने की कोशिश की है. मेरा उपन्यास अतीत की स्मृतियों पर आश्रित है.

मैं आपको कहानी तो नहीं सुना सकता पर मैं उन स्थितियों का सिल-सिला बता सकता हूं जिन्हें मैंने **उसका बचपन** में चित्रित किया था. केंद्रीय चरित्र वही है. फर्क सिर्फ यह है कि **उसका बचपन** बहुत ही संकीर्ण पारि-वारिक स्थितियों को लेता है जबकि बच्चा प्रारंभिक तौर पर बहुत-सी घटनाओं और परिवार-जन के प्रति प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है.

वहां परिवार के साथ-साथ कस्बा भी मौजूद है.

'गुजरा हुआ जमाना' एक बड़ा उपन्यास है. यह विस्तार चरित्रों की बड़ी संख्या में भी नजर आता है. बच्चा परिवार से बाहर जाता है. (उपन्यास के अंत में) करीब 17-18 साल के प्रमुख पात्र के विचारों से सामाजिक और राजनैतिक चित्र के साथ-साथ कस्बे का भी पूरा माहौल खींचा गया है. और कुछ दूसरे पात्र भी हैं जिन्हें 'डेवलप' किया गया था. □

(अंग्रेजी से अनुवाद : महेश दर्पण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वर्षों पहले का वह अनर्थ! चैत की चांदनी में खलिहान के गेहूं के भूसे पर उसके पितामह उसे संस्कृत के श्लोक सिखा रहे थे. पट्टीदारों के लोग आये और देखते-देखते गंडासे से पितामह के दो टुकड़े कर दिये और खलिहान में आग लगा दी." ऐसे भयावह परिवेश की स्मृतियों में डूबे विदेश में बसे एक भारतीय की पीड़ा का आख्यान—

काला हंस

• शालिग्राम शुक्ल

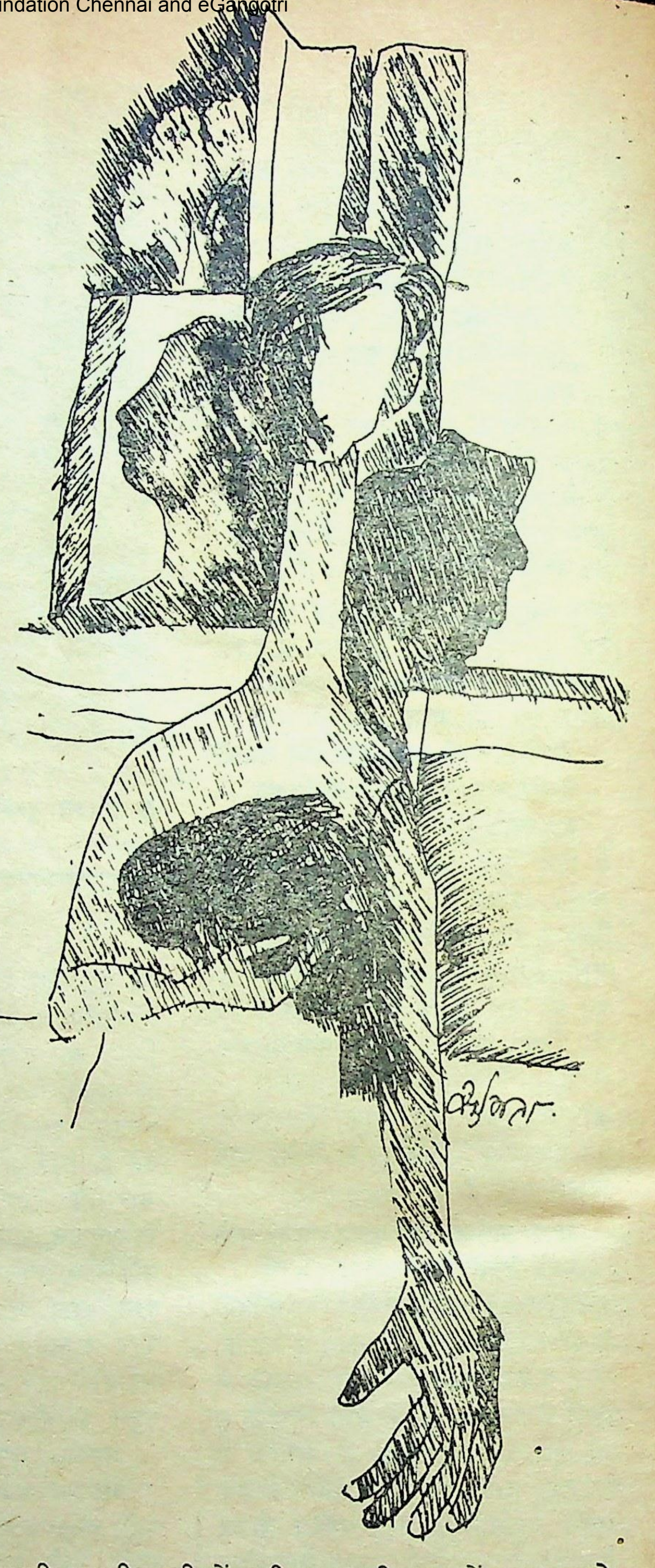

कितनी गहराई तक गयी होंगी ये जड़ें, सुनहली लड़की ने सांवले पुरुष से कहा और कहीं कोई जड़ अनुभव करती सिहर उठी.

न्यूयार्क प्रदेश की उस झील के किनारे एकांत में ऊन और देह की महक पीती उनकी सांसें अक्तूबर की सूखी ठंडी हवा में भाप बन लिपटती खो जातीं. लहरों पर टूटता सूरज उन्हें उत्साहित करता रहा. पेड़ के पत्तों का रंगीन शृंगार उनमें उमंगें भरता रहा. नीली आंखों में रह-रहकर आकाश और कांपता वसंत उतर-उतर आता. रह-रहकर विद्ध स्वर्ण-चिड़िया पंख फैलाये फड़फड़ा उठती. घास में नारंगी रंग उतर आया था.

उस जड़ लेते एकांत में पिछली गर्मियों का कोई सिलसिला निर्णय पर पहुंच चुका था. पिछली गर्मियों की ही तो बात थी. विश्वविद्यालय में छुट्टियां हुईं. देशी-विदेशी सांस्कृतिक कार्यक्रम रात में हरियाली पर जगह-जगह आग से चमक उठते. पुस्तकालय के पास के पानी में उस रात एक नाव झलक रही थी. वहीं पत्थरों के एक मंच पर पेड़ों से लटक रहे प्रकाश के नीचे फीनिश-लोकनृत्य हो रहा था. रात गये पुस्तकालय से लौटते नरायन वहीं एक पेड़ के नीचे रुक गया. नाच खतम होने पर नाचनेवाले चीड़ों के पीछे अंधेरे में खो गये, सिवा एक नाचनेवाली लड़की के, जो आकर नरायन के पास पेड़ की जड़ पर थकी बैठ गयी.

लड़की की शिथिल गोरी बाहों पर सोने के तारों जैसे केश हल्की हवा में उड़-उड़ जाते. चीड़ों में सांय-सांय करती हवा बहे जा रही थी. लड़की ने अपनी खिसक गयी अंगिया ठीक की. चेहरे पर विखर आये केशों को हटाती ऊपर देखती हंस पड़ी. नरायन भी हंस पड़ा. आखिर वह यहां खड़ा क्यों है? तभी शिकारी-सा कोई आया. देह से उसका स्वागत करती लड़की पानी में प्रतीक्षा करती नाव में उतर उसके साथ तरल अंधेरे में खो गयी.

थोड़े दिनों बाद मौसम की तेज गर्मी पड़ी तो लोगों का तन-मन झील की तरफ उड़ चला.

नीले पानी में लयदार सांवली देह लड़की को खींचती रही. झील पर रुकी नाव पर सूरज तलवार-सा झलक उठा. कोई आवाज दे रहा था. क्या वह नाच की रात वाली नाव थी? नरायन ने लड़की पहचानी. दोनों एक ही दिशा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैरते रहे. एक की लोहे-सी लंबी सांवली भुजाएं पानी काटती रहीं, दूसरे की सोने की काया झील में प्रकाश पकड़ती रही.

उसी सप्ताह नगर से दूर पहाड़ी पर बने एक प्राचीन घर में प्रोफेसर ब्रूखमान ने समारोह किया था. आधी रात बाद नरायन बरामदे में अभी उतरा ही था कि वही लड़की पीली रोशनी में खड़ी मिली. नरायन को देख अपने साथी से कुछ कहते-कहते रुक गयी. साथी ने नरायन की उपस्थिति स्वीकार की. वे प्रोफेसर ब्रूखमान के छोटे भाई डॉक्टर कार्ल ब्रूखमान थे. लड़की हरे कपड़े में एक डाली-सी लगी. रात गये तक नरायन हरी डाली में चमकते सुनहले सेब देखता रहा. इस तरह नरायन और लड़की एक दूसरे से मिलते, एक दूसरे के खयालों से उलझते रहे. अपनी आग से एक दूसरे के अंधेरे को सुलगाते रहे.

एक दिन राह चलते बारिश होने लगी. आड़ की तलाश में नरायन एक आधी बनी इमारत की सीढ़ियों के नीचे आया तो वह वहां पहले से थी. एक दूसरे से सटे वे प्रतीक्षा करते रहे, पानी रुकने की नहीं. बूंदें ईंटों पर तबाह होती रहीं और महकती देहें मोहित करती उन्हें तबाह करती रहीं.

बूंदें पतली होने पर दोनों बाहर आये. अपनी नीली आंखों का रंग उड़ेलती लड़की ने पूछा, "प्रोफेसर ब्रूखमान हमारे मित्र हैं न?"

आंखों के नीलेपन पर हैरान होते नरायन ने हामी भरी. फिर पूछा, "ये आंखें बरसात में चेहरा तो नहीं रंग डालेंगी."

दोनों हंस पड़े.

"यहां क्या पढ़ रही हैं?" नरायन ने पूछा.

"ऋतु विज्ञान, और आप?"

"भौतिक विज्ञान."

दोनों एक ही दिशा में चलते रहे. कद में वह लंबी थी और नरायन उससे भी लंबा. लड़की ने फिनलैंड में घोड़ों की सवारी की थी. नरायन को देख उसे किसी काले रेशमी घोड़े की याद आयी. मुस्करा उठी. उसका नाम सोन्या था. वह भी विदेशी थी, फिनलैंड की.

उस भीगी मुलाकात के बाद एक रात किताबों की दूकान में वे मिले. प्रकाश-पुंज के नीचे खड़ी वह कोई किताब पढ़ रही थी. सुनहले बालों पर उजाला फंस गया था. नंगी बाहों के प्रकाशित रोवें असहनीय हो उठे तो नरायन बाहर निकल आया. प्रकाश-पुष्पों वाली रात रोमांचकारी हो उठी थी. एक ही स्थान पर जड़ा रहा. कई लंबे क्षणों बाद वह भी बाहर आयी. दोनों चुपचाप पेड़ों के अंधेरे में ढाल की ओर उतर पड़े.

सोन्या के हाथ में कागज में लिपटे आधे दर्जन तीर थे. किसी मित्र को तीर-कमान का शौक था, उसने बताया.

एक आदिकालीन वृक्ष के गर्म अंधेरे में बैठे घाटी की टूटती-जुड़ती रोशनियों में एक दूसरे का स्पंदन अनुभव करते रहे. आग्रह करने पर नरायन ने भारतवर्ष की बातें बतायीं. सोन्या घाटी की रोशनियों में परायी सभ्यता के बिंबों से उलझती गयी. नरायन के लिए वहां बह चली गंगा, जिसके तट की मानवता, करुण दयनीयता और क्रूरता किसी अंतहीन नाटक-सी उभरती रही.

"मैं तुमसे प्यार करने लगी हूं." सोन्या ने दूर देश में खो गये मित्र से कहा. अंधेरे में उसके तमतमा उठे कपोलों को छूता किसी भविष्य की कल्पना से नरायन कांप उठा.

दूसरे दिन बिना बताये सोन्या दूर पहाड़ पर बनी ऋतु-शाला चली गयी. संभवत: भविष्य ने उसे भी कंपा दिया था. "पतझर के दिन आते आते आ जाऊंगी." एक चिट पर लिख नरायन के पास भेज दिया.

लेकिन पतझर के आने तक इंतजार न कर सकी. अक्तूबर की एक रात ठंड पड़ी. पौधों को पाला मार गया. पेड़ की पत्तियों से रंग उतर आया. नरायन विश्वविद्यालय जा रहा था कि ढाल पर सोन्या दिखायी पड़ी. उसकी ओर दौड़ पड़ा. सोन्या की आर्द्र आंखें झील की ओर थीं.

झील तट के रंजित एकांत में सूरज परछाईयों को सीधा कर रहा था, लेकिन किसी दूसरी दुनिया में बिजली चमक उठी. उर्वर धरती भीगती रही. आर्द्र-उत्सव बीता तो क्लांति छा गयी. यह कैसा सपना था? यह उदासी क्यों? 'क्या हम आखेट हो चुके हैं.' उन्होंने एक दूसरे से निःशब्द प्रश्न किया. 'आखेटक कौन है?'

उस रात वे नृत्य-गृह में गये. तेज संगीत और नीले धुएं के बीच उन्हें डर था कि कहीं कुछ खो न जाये. उस रात सोन्या नरायन के पास ही रही. वे संगीत सुनते रहे. संभवत: वायलिन की वह धुन थी, या जीने की उद्दाम उद्दाप्त इच्छा, या उठ-उठ आती सर्जनात्मक शक्ति, या यह सब कुछ—वे निश्चित निःशंक, निर्णय एक दूसरे को स्वीकारते रहे.

सुबह सूरज कमरे में आया तो वे चौंक पड़े. भेद खोलती किरनों को किसी तरह बाहर खदेड़ किसी उत्सव के पुनर्निर्माण में जुट गये, "लगता है हम अपना सपना हो चले हैं," सोन्या ने कहा, नरायन का चेहरा सुनहले केशों से ढंक उठा था, या सुनहले जाल में?

कुछ दिनों बाद सोन्या पहाड़ पर बनी ऋतु-शाला लौट गयी. महीना बीतते-बीतते उसे मालूम हो चला कि वह गर्भवती है. इस मोहक और भयावह सत्य को नरायन से गुप्त रखा. क्रिसमस की प्रतीक्षा थी, जब वे साथ होंगे.

क्रिसमस में आयी तो नरायन उसे देखता रह गया. नरायन की धातु-सी भुजा पर सुनहला सिर टिकाये आंखों का नीला आकाश बंद किये आनेवाले समय में प्रकाश ढूंढती रही. शाम को झील तट पर निष्पन्न पेड़ों की शांति में वे अकेले थे. "चाहती हूं अस्तित्व तुम में उड़ेल होने के भार से मुक्त हो जाऊं." आंखों की नीलिमा रात बन चली.

पेड़ों की आड़ में, एक दूसरे में स्पंदित, मोहित वे झील पर रास्ता बनाते चांद को देखते रहे. भुजाओं में कसे निष्कंप खड़े रहे. फिर नरायन की अंगुली अपनी नाभि में रख उसने अपने गर्भ की बात बतायी. वे चले तो चांदनी में उभरे बर्फ के चकत्ते पैरों तले चरमरा उठे.

उस रात के बाद कई दिनों तक सुनहली धूप में आस पास की आबादी चमकती रही. एक दिन फर्श पर बिछे कंबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

उसका संरक्षक

■ जगदीश कश्यप

ग्रामीण क्षेत्र के एक जन-संपर्क अधिकारी ने बंधुआ प्रथा से मुक्त एक बूढ़े को जब यह बताया कि अब वह आजाद है तो ग्रामीण अचंभे से उस बाबू को घूरने लगा और भयभीत आवाज में बोला कि वह शीघ्र ही वहां से भाग जाये वरना ऐसी बातें करने पर नंबरदार के गुंडे उसे मार डालेंगे. इस पर अधिकारी को घोर अचंभा हुआ. उसने ग्रामीण को समझाते हुए बताया कि सरकार ने उसके तमाम कर्जों को मुआफ कर दिया है. अगर सूदखोर जबरदस्ती कर्ज वसूल करेगा तो उसे जेल में डाल दिया जायेगा.

पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्ज से लदे उस बूढ़े ने अधिकारी को पागल समझा. वह उसके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए बोला, "भगवान करे, तुम्हारी कही बात सच हो जाये!" ग्रामीण के इस वाक्य से अधिकारी को कुछ संतोष हुआ. अतः वह बोला, "तुम लोगों को सरकार अब मुफ्त जमीन भी दे रही है."

ग्रामीण चौंका नहीं. उसे पता था कि चुनाव वाले हर बार उनके गांव में वोट लेने के मौसम में ऐसी ही बातें करते हैं. उसने पूछा, "बाबू, का आप वोट लेने वारे हैं?"

"नहीं भैया, अब तो सरकार तुम्हें अपना मकान बनवाने के लिए कर्ज भी देगी." अधिकारी ने आंकड़े देकर वृद्ध को समझाया कि सरकार ने अब तक कितनी जमीन गरीबों को मुफ्त बांटी है और कितने लोगों को निजी धंधा शुरू करने के लिए कर्ज दिये हैं.

ग्रामीण समझ नहीं पा रहा था कि वह अधिकारी उसके पीछे क्यों पड़ा हुआ है. और धूप में उसके साथ दो मील पैदल भी चल चुका था. बूढ़े ने हमदर्दी झलकाते हुए कहा, "बाबू, तन सुस्ता लो, धूप में साला दिमाग गरम होई जावे करै है."

दूसरे दिन गांव में एक समारोह हुआ, जिसमें जिला अधिकारी, बैंक मैनेजर तथा ग्राम प्रधान के साथ काफी संख्या में ग्रामीण उपस्थित थे. जब उस बूढ़े ने जन-संपर्क अधिकारी द्वारा बतायी गयी बातों को ठीक पाया तो वह बार-बार अपने हाथ वाले उन कागजातों को उलटने-पलटने लगा, जो उसे मुफ्त जमीन दिये जाने का प्रमाण थे. उसके हाथ में बैंक द्वारा प्रदत्त कर्ज की रकम भी थी. इस समारोह में नंबरदार भी था, साहूकार भी था, जिनकी जी-हजूरी करते हुए उसकी सात पीढ़ियां खत्म हो चुकी थीं. ये लोग गरदन झुकाये बैठे थे.

उस बूढ़े ने पहली बार गरदन उठाकर उन्हें घृणा से घूरा गोया कि वह अपने ऊपर किये गये जुल्मों का बदला लेने ही वाला हो. उसे पहली बार अनुभव हुआ कि उसका भी कोई संरक्षक है. काश! उसका संरक्षक कुछ वर्ष पहले आ गया होता. तब उसकी जवान लड़की असमय गर्भवती न होती, जिस कारण वह कुएं में डूब मरी. □

● डी-32, गली सिटी डाकघर, गाजियाबाद-201001

पर लेटी सोन्या के रोंपे दक्षिणी धूप में धधक रहे थे. एकाएक एक बड़ा-सा काला बादल झील की ओर से आया और देखते-देखते कमरा स्याह हो उठा. सोन्या किसी अनजाने डर से कांप उठी. उसने जोर से नरायन का नाम ले पुकारा. उसे मालूम नहीं था कि नरायन पास बैठा उसे देख रहा था.

"क्या बात है डार्लिंग?"

"यह डर क्यों? मेरा कलेजा छुओ, इतना कंपन क्यों?"

उस रात सहमे वे किसी प्रकाशहीन तथ्य को समझने का प्रयास करते रहे. दूसरे दिन सोन्या पहाड़ पर ऋतु-शाला चली गयी.

मार्च में हिंदुस्तान से नरायन के पिता का पत्र आया. कोई अपनी संपत्ति बेच शहर जा रहा था. पिता ने पच्चीस हजार रुपयों की मांग की थी. वह संपत्ति खरीदना चाहते थे. पत्र ने असमंजस में डाल दिया. जो कुछ पैसे जमा कर रखे थे, वह सोन्या के बच्चा पैदा होने का खर्चा था. इस असमंजस की चर्चा नरायन ने अपने मित्र प्रोफेसर बूखमान से की. प्रोफेसर ने इसकी चर्चा अपने भाई डॉक्टर कार्ल बूखमान से की. कार्ल सोन्या के अतीत के साथी थे और नरायन से उन्हें ईर्ष्या थी.

दूसरे दिन कार्ल ने नरायन को फोन किया. कहा, "क्यों न घर पर ही बच्चा पैदा हो. अस्पताल के सभी खर्चे बच जायेंगे. तुम अस्पताल में आकर बच्चों का पैदा होना देखो, मेरे साथ उन मौकों पर शरीक होओ. अभी पर्याप्त समय है."

सोन्या की सहमति मिलने पर नरायन ने सुझाव मान लिया. अपनी सारी बचत और सोन्या से कुछ और पैसे ले पिता को भेज दिये.

दिन-रात पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रहने के बावजूद इतनी बेचैनी क्यों? समय की गति इतनी भारी क्यों? सोन्या की अनुपस्थिति से पीड़ित एक शाम नरायन उस पुस्तक की दूकान गया, जहां प्रकाश की धारा से अभिषिक्त वह उसे एक बार दिखी थी.

मई के प्रारंभ में सोन्या को ऋतु-शाला से लाने नरायन चल पड़ा. रास्ते में जंगल का एक सूखा खंड आग में दहक रहा था. जान ले भागता एक हिरन नरायन की गाड़ी से टकरा, आहत हो सड़क पर गिर पड़ा. रुककर नरायन ने उसे सहलाया, फिर उठाकर गाड़ी की पिछली सीट पर रख लिया.

ऋतु-शाला के बरामदे में बैठी सोन्या प्रतीक्षा कर रही थी. आहत हिरन-शावक को देख उसकी आंखें भर आयीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी परिचर्या के बाद हिरन उठ खड़ा हुआ. शाम होते-होते पहाड़ के उतराव की ओर चीड़ वन में चला गया.

गंगा किनारे के उस देश-काल से लौटते सोन्या को निहारते नरायन ने कहा, "तुम जैसे कोई अलौकिक फूल हो. जिसके बीच एक बड़ा-सा फल बढ़ रहा हो."

ऋतु-शाला से वापस आ दोनों झील तट पर बने प्रोफेसर ब्रूखमान के काटेज में रहने लगे. अस्पताल और डॉक्टर कार्ल का दवाखाना नजदीक ही था.

झील पर जब कभी समय थम जाता एक काला हंस उनके ध्यान का केंद्र बन क्रीड़ा करता रहता. हंस की लयदार गति में सोन्या नरायन के अंग देखती. हंस से नरायन का परिचय बढ़ता गया. इतना कि डॉक्टर कार्ल हंस को नरायन नाम से पुकारने लगे.

जून की रात थी. चांद चढ़ आया था. सोन्या को सोयी छोड़ नरायन झील तट पर आकर बैठ गया. चांद पानी में टूट रहा था. पास झाड़ी में फड़फड़ाहट सुन नरायण दौड़ा. काला हंस छटपटाता दम तोड़ रहा था. लपककर उसे गोद में ले लिया. बरामदे की रोशनी में जांच की. गर्दन के पास से होता एक तीर बायीं टांग के नीचे झूलते टखने के पास निकल आया था.

"नरायन डार्लिंग," सोन्या ने अंदर से कराहते पुकारा. हंस छोड़ वह दौड़ गया. रोशनी तेज की. बड़े तकिये पर टांगें रखें सोन्या लेटी थी. चादर से पेट और जांघें ढंकी थीं. हाथों से पेट थामे हुए थी.

"कब से पीड़ा शुरू हुई?" सोन्या के हाथों की उभरी नसों को सहलाते नरायन ने पूछा.

"आधी रात के पहले से ही. शाम को ही मुझे कुछ बदला-बदला लग रहा था."

"क्या अभी देर है?"

"हर पांच मिनट पर दौरा आ रहा है." सोन्या ने हंसने की कोशिश की.

"मुझे पहले क्यों नहीं बुलाया?" सोन्या का पेट छूते नरायन ने कहा. "दोष मेरा है. मुझे यहां से जाना नहीं चाहिए था."

"सब ठीक है, डार्लिंग." सोन्या मुस्कराने का प्रयत्न करती रही.

"सब तैयार है न?" मेज की ओर देखते उसने पूछा.

"सब कुछ वहां मेज पर है." सोन्या कराह उठी.

"मैं कार्ल को फोन करता हूं."

लेकिन डॉक्टर कार्ल नहीं मिले. वे अस्पताल में व्यस्त थे. थोड़ी देर बाद उनका फोन आया.

"घबराने की कोई बात नहीं. मैं नर्स को तत्काल मेज रहा हूं. थोड़ी देर बाद स्वयं आऊंगा."

छोटी-छोटी गद्दियां, बच्चे को लपेटने का कंबल, नायलान के धागे, रुई के फाहे, कैंची, साबुन आदि नरायन ने किसी क्रम से मेज पर रख दीं. मेज को बिस्तर के पास ले आया. स्टोव पर खौलते पानी में कैंची डाल, फिर उस बर्तन को मेज पर रख, साबुन से हाथ धो, नाखून साफ कर, हवा में हाथ मांजता, सोन्या के पैताने खड़ा हो गया.

"दौरे अब जल्दी-जल्दी आ रहे हैं." सोन्या बोली.

नरायन ने उसके ऊपर की चादर उठायी. प्रसव पीड़ा का नवीनतम दौरा खत्म हुआ तो सोन्या की जांघें उठा नीचे गद्दियां रख दीं. फिर साबुन लगा कांपते हाथों सोन्या के अंग साफ किये. सोन्या ने अभी सांस ली ही थी कि पीड़ा का एक नया दौरा आया और जांघों के बीच एक पतली धार बह चली. थैली टूट चुकी थी. बच्चा कुछ नीचे आ चुका था. सोन्या सहसा पीड़ा से दुहरी हो उठी. गर्दन की नसें तन उठीं. प्रसव पीड़ा से देह ऐंठ-ऐंठ उठी.

"सम्हल के डार्लिंग, सपाट लेटी रहो. सीधे, हां ऐसे ही सीधे. एकदम सीधी लाइन में आने दो. हां ऐसे ही, ऐसे ही. बच्चा अब निकल ही आया." नरायन ढाढस बढ़ाता रहा.

अंग चीरता बच्चे का सिर बाहर निकला तो नरायन ने उसे पकड़ लिया. डर था कि कहीं बच्चा खुलते फटते अंग से नीचे लटक न जाये. न सह सकने वाली पीड़ाओं से दोनों लड़ते रहे.

नाड़े से कहीं बच्चे की गर्दन कस न जाय, इस नाते उसने छोटे भींगे चमकते सिर को एक तरफ घुमाया. तीखी चीख के साथ सोन्या प्रसव पीड़ा के अंतिम दौरे से गुजरी तो पूरे का पूरा बच्चा नरायन के हाथों में सरक आया.

"ओह डार्लिंग, कितनी बहादुर है. देख यह बच्ची हुई."

नरायन ने बच्ची दिखा फिर उस अचरज-पुरुष को कंबल में लपेट सोन्या के पेट पर लिटा दिया. उसने शिशु के चेहरे को नीचे ही रखा. डर था कि मुंह में पड़ा रक्त आदि गले से नीचे न उतर जाये.

"नहीं, अभी इसका मुंह न उठाओ सोन्या." कहते हुए शिशु का मुंह साफ कर उसने उसे निहारा. "यह कैसा रहस्य है? न मुख, न दुःख, एक भाषाहीन आदिकालीन अस्तित्व."

बच्ची को मां के पेट पर दुबारा रखते नरायन ने पूछा, "कैसी हो डार्लिंग?" मुस्कराती और रोती सोन्या कुछ न कह सकी. विलंब के लिए क्षमा मांगती डॉक्टर कार्ल की भेजी नर्स आयी.

क्षण भर बाद एक और दौरा आया, सोन्या का पेट सिकुड़ा फैला और समूचा नाड़ा निकल गद्दी पर छद् से गिर पड़ा. नर्स ने शिशु की नाभि के ऊपर चार इंच छोड़ नाड़ा नायलान से बांधा. इंच भर दूरी पर एक और गांठ लगायी और दोनों गांठों के बीच नाड़ा काट दिया. बच्ची चिल्ला उठी, "अब तू अपने पर है, स्वतंत्र." मुस्कराती नर्स ने कहा.

नर्स ने कटी नाभि पर फाहा लगाया. फिर उसकी देह साफ की. सोन्या को सहारा दे उठा नरायन ने उसके नीचे की गद्दियां हटायीं. नाड़े को दूसरी गद्दी में लपेटा और सब कुछ एक बड़े से कागज के थैले में डाल दिया. फिर नर्स की सहायता से उसकी देह बड़े-बड़े गरम नम फाहों से साफ की. सोन्या की जांघों के नीचे एक साफ गद्दी बिछायी, खुला अंग बंद किया और पैर सीधे किये. सोन्या की बगल में लेटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्ची सो रही थी.

तभी फोन बज उठा. डाक्टर कार्ल थे. समाचार पूछा और नर्स की लायी हुई कोई दवा सोन्या को देने को कहा. दवा दे नर्स ने विदाई ली. कहा कि दस बजे फिर आयेगी.

इतनी थकान, इतनी राहत और इतना अकेलापन! बच्ची आराम से सो रही थी मानों इन घटनाओं में उसका कोई हाथ नहीं था.

"अब तुम भी आराम करो." सोन्या ने नीली आंखों का पानी पीते हुए कहा.

"अभी कुछ और काम हैं." कहता नरायन खून में सनी गद्दियां और नाड़ा भरा थैला उठाये बाहर आया.

मैदान में एक बड़े पीपे में थैला फेंक, उस पर कुछ अखबार के टुकड़े और पेट्रोल डाल आग लगा दी. जीभ लपलपाती आग भभक उठी. एक आदिकालीन वृक्ष के पीछे परिश्रमी क्षितिज में चांद उतर रहा था. नरायन कई क्षणों तक वहीं खड़ा रहा. फिर वहां से हट सीढ़ियों पर बैठ गया. वहीं मरा हुआ हंस पड़ा था. गर्दन का पसीना पोंछने के लिए पैंट की थैली से रूमाल निकाला तो कागज का एक टुकड़ा हंस के ऊपर गिर पड़ा. सुबह की चिट्ठी थी, जिसे वह अभी तक पढ़ न सका था. मामा ने लिखा था, "तुम्हारे पिता ने जो जमीन लेने की ठानी है, उसमें खतरा है. पट्टीदारी के लोग वह जमीन किसी दूसरे को लेने नहीं देंगे. अपने पिता को मना कर दो नहीं तो मारपीट और हत्याओं का सिलसिला शुरू हो जायेगा. तुम्हें शायद वह वर्षों पहले का अनर्थ याद हो. . ."

वर्षों पहले का वह अनर्थ. चैत की चांदनी में खलिहान के नरायन के पितामह उसे संस्कृत के श्लोक सिखा रहे थे. वहीं पट्टीदारी के लोग वहां चोर से आये और देखते-देखते गंडासे से पितामह के दो टुकड़े कर दिये, खलिहान में आग लगा दी, और नरायन को उस अग्निदाह में फेंकने वाले थे कि किन्हीं हाथों ने रोक दिया. "इस बच्चे से कोई बैर नहीं." कोई कह रहा था.

सीढ़ी पर पड़े हंस की ओर या अपने पितामह की ओर झुक नरायन ने आदर भाव प्रकट किया. सोन्या के पास आया तो पाया कि अभी वह जाग रही थी.

"कहां रहे इतनी देर तक?" कहने में शिकायत थी.

"काले हंस को किसी ने तीर से मार डाला." लज्जित और दुखी नरायन ने कहा.

"तीर से? तीर कहां है?"

"हंस की देह में."

"निकालकर लाओ तो." वह किसी खयाल में खो गयी. फिर बोली, "जब तुम शहर गये थे दिन में, वह यहां आया था. तीसरे पहर हंस जीवित था." वह एकाएक चुप हो गयी.

"कौन आया था?"

तभी बाहर मोटर रुकने की आवाज आयी. डॉक्टर कार्ल ब्रूखमान थे. अंदर आ बधाई देते कुशल पूछा. सोन्या की जांच की. बच्ची को देखा. कहा कि तीन-चार दिनों में सोन्या चलने-फिरने लगेगी.

ग़ज़ल

आंखों में आयेगा कभी दिल पर भी आयेगा,
उतरेगा नक्श बन के वो मंजूर भी आयेगा.

अब चल पड़े हैं पांव तो आंखों के सामने,
जिसकी तलाश थी हमें वह दर भी आयेगा.

सिमटेगी गर जमीन तो फैलेगा आसमां,
कूजे में बंद हो के समंदर भी आयेगा.

गुलचीं बने हैं आज गुलिस्तां के पासबां,
अब साजिशों का बाग में लश्कर भी आयेगा.

अच्छा नहीं पड़ोस का अपने ही घर जले,
बाहर की आग का धुआं अंदर भी आयेगा.

माना कि खुशनुमा है बड़ा दिलनशीन है,
शीशे का घर बना है तो पत्थर भी आयेगा.

परवेज आओ रेत में हम सीपियां चुनें,
तदबीर कुछ करेंगे तो गौहर भी आयेगा.

▣ रऊफ परवेज

"काफी बनाऊं कार्ल?"

"जरूर, धन्यवाद नरायन. तुमने तो कमाल कर दिया."

नरायन रसोई घर में चला गया तो कार्ल की आंखों में देखते सोन्या ने पूछा, "तुमने हंस को मार क्यों डाला?"

"मैं तुम्हें अब भी उतना ही चाहता हूं सोन्या."

सोन्या ने कुछ और नहीं कहा. हंस की पीड़ा और मृत्यु के दुख से आंखें भरती रहीं.

काफी पी कार्ल ने विदाई ली. "जरूरत पड़े तो निस्संकोच कहना, नरायन." जाते-जाते कहते गये.

"नरायन, कार्ल हत्यारा है. उसी ने हंस की तीर से हत्या की."

"कार्ल?"

सोन्या की देह सहलाता नरायन कई लंबे क्षणों तक चुपचाप बैठा रहा. दवा का असर होने लगा तो सोन्या अपनी बच्ची को दुबकाये सो गयी. किसी कथा के चरित्र की तरह नरायन अपने सोते परिवार को देखता रहा.

बाहर आया तो झील पर और पूर्वी आकाश में सूरज के सतरंगी घोड़ों के चल चुकने के संकेत जाहिर हो उठे.

"उस रथ में क्या हमारे लिए भी स्थान है?" नरायन के प्रार्थना करते ओंठ बुदबुदा उठे. □

● स्कूल आफ लैंग्वेज्स एंड लिंग्विस्टिक्स, डिपार्टमेंट आफ लिंग्विस्टिक्स, गिओर्गेटन युनिवर्सिटी, वाशिंगटन, डी. सी. 20057 (संयुक्त राज्य अमरीका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भुलाये न बनें

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

मां बनाम नौकरानी

▣ किरन सेंगर

छात्रावास के बाहर निकल रही थी. बी. एस. सी. प्रथम की एक छात्रा गेट के बाहर किसी महिला से बातचीत करती दिखी. महिला देखने में सामान्य-सी थी. मैंने आंखें घुमाकर उनकी ओर देखा. उसने मुझे नमस्ते किया. छात्रा के ऐसा करने पर उन महिला ने निगाह मेरी ओर उठायी. उनकी आंखों में न जाने कौन से भाव थे कि मेरे हाथ स्वतः ही नमस्कार की मुद्रा में जुड़ गये. उन्हें नमस्कार कर मैं आगे बढ़ गयी. एक दिन मैंने उस छात्रा से पूछा, "वह कौन थीं जो तुम से बात कर रही थीं?" पहले तो वह अचकचायी पुनः बोली, "दीदी, वह मेरी घर की नौकरानी थी."

इस बात को गुजरे एक अरसा बीत गया. मैं एकदम से भूल भी गयी थी. अचानक उन महिला से पुनः मुलाकात हो गयी. रास्ते में उन्होंने मुझे देखते ही पहचाना और मेरे पास आ, आत्मीय तरीके से बोली. मैंने नमस्ते किया और पूछा, "उसकी (छात्रा) अम्मां कैसी हैं? कभी आती नहीं हैं." मेरे इस वाक्य को सुन वे अवाक् रह गयीं और बोलीं, "क्या मैं तुम्हें उसकी अम्मां नहीं लगती?" उनके कथन को सुन मैं अचकचा गयी और अपने किये प्रश्न के ऊपर ही बहुत खीज हुई. वे महिला अपनी आप-बीती स्वयं ही सुना गयीं और मुझे आशीर्वाद दे चली गयीं. उनसे ही पता चला कि उसकी (छात्रा) जिंदगी में मां ही सब कुछ थीं. स्वयं दुख उठाकर सामान्य दिखने वाले थोड़े मैले वस्त्र धारण कर अपनी पुत्री को आज की सारी सुख-सुविधायें उपलब्ध करा रही हैं. आखिर क्यों... क्या इसलिये कि वह मां की जगह उन्हें नौकरानी बताये! □

ईश्वर का लेन-देन

▣ उर्मिला गाड़िया

मैं अपने बड़े भैया के पास डांडेली गयी हुई थी. भैया के सामने वाले क्वार्टर में एक इंजीनियर रहते थे जिनके दो लड़कियां और एक लड़का था तथा पत्नी फिर चौथे बच्चे को जन्म देने वाली थी. पत्नी को हास्पिटल में एडमिट करवा दिया था. पिता रात को तीनों बच्चों को लेकर घर लौट आये. बच्चों को नींद आ रही थी. दोनों लड़कियों ने जल्दी रसोईघर में जाकर अपने ही हाथों से अपने गिलास में दूध लिया और पी गयीं. दोनों जाकर अपने बिस्तर पर लेट गयीं. कुछ देर बाद लड़कियों से बड़ा लड़का भी रसोई घर में दूध पीने गया. वह भी अपने गिलास में दूध डालने लगा. दूध की मात्रा अब कम थी. उसे पतेली में नीचे कुछ नज़र आया. उसने अंदर हाथ डालकर देखा. उसे कुछ मोटा-मोटा-सा छू आया. बच्चे ने हाथ से पकड़कर बाहर कर दिया. ज्योंही छिपकली देखी वह जोर-जोर से चिल्ला पड़ा, "पापा जल्दी आओ." पिता ने आकर देखा छिपकली है तो वह उससे मालूम कर कि उसने तो नहीं पिया, वापस उल्टे पांव अपनी लड़कियों के पास दौड़े जिन्होंने 10 मिनट पहले दूध पिया था. उनके पास जाकर उन्हें जगाया मगर बच्चियां बोलने में असमर्थ थीं. वह उन्हें जल्दी हास्पिटल लेकर पहुंचा. मगर घंटे भर में लड़कियों ने दम तोड़ दिया था. ठीक घंटे भर बाद पत्नी ने जुड़वां बच्चियों को जन्म दिया. सभी बड़े असमंजस में थे कि ईश्वर ने ये क्या लेन-देन किया है. □

जन्म दिन

▣ डा. शब्बीर सिद्दीकी

उस दिन मेरा भी जन्म दिन था. लगभग तीन बजे एक संभ्रांत-सा व्यक्ति आया और मेरी ओर मिठाई का एक डिब्बा बढ़ाता हुआ बोला, "बाबूजी, यह मिठाई स्वीकार करो. आज मेरा जन्म दिन था." मैंने मिठाई का डिब्बा और उस आदमी को गौर से देखा तो मेरी आंखें फटी की फटी रह गईं. वह आदमी प्रतिदिन मेरे दफ्तर जाने के समय पाबंदी से दस पैसे का सवाल करता था और मैं बड़ी फरमाबरदारी से उसकी ओर दस पैसे बढ़ा देता था. वही आज मेरे लिए मिठाई का डिब्बा लाया था. मैंने उसे जल्दी से अंदर बुलाया और पूछा, "भई, तुम तो भीख मांगते हो फिर तुम्हारे हालात इतने अच्छे कैसे हो गए कि जन्म दिन मनाने लगे?"

वह बोला, "बाबूजी, मैं अपनी बिरादरी के पच्चीस हजार आदमियों (फकीरों) का चौधरी हूं इसलिए इन पर हमारा ही इशारा चलता है. कल एक नेताजी आये थे जुबान पक्की कराने कि इलेक्शन होने वाला है, वोट हमारी ही पार्टी को पड़ेगा. बाबूजी मैं जुबान का पक्का हूं, एक बार जिस पार्टी को जुबान दे दी, दे दी. बेचारे दस हजार ब्याना देकर जुबान पक्की करा गये हैं और किसी दिन आकर हमारी बिरादरी को कंबल वगैरह भी बांट जायेंगे. बाकी पैसा वोट पड़ने के टाईम पर मिलेगा," कहते-कहते उस फकीर ने मेरी तरफ देखकर बड़े राज से कहा, "बाबूजी, आपको भी एक कंबल भिजवा दूं, किसी को कानों-कान खबर न होगी."

मैंने ललचाई नजरों से उसकी ओर देखा तो वह मेरा मतलब बगैर 'हां' कहे ही समझ गया और फिर वह मेरी ओर देखकर इस तरह मुस्कराया जैसे कह रहा हो आज से आप भी मेरी बिरादरी में शामिल हो गए हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

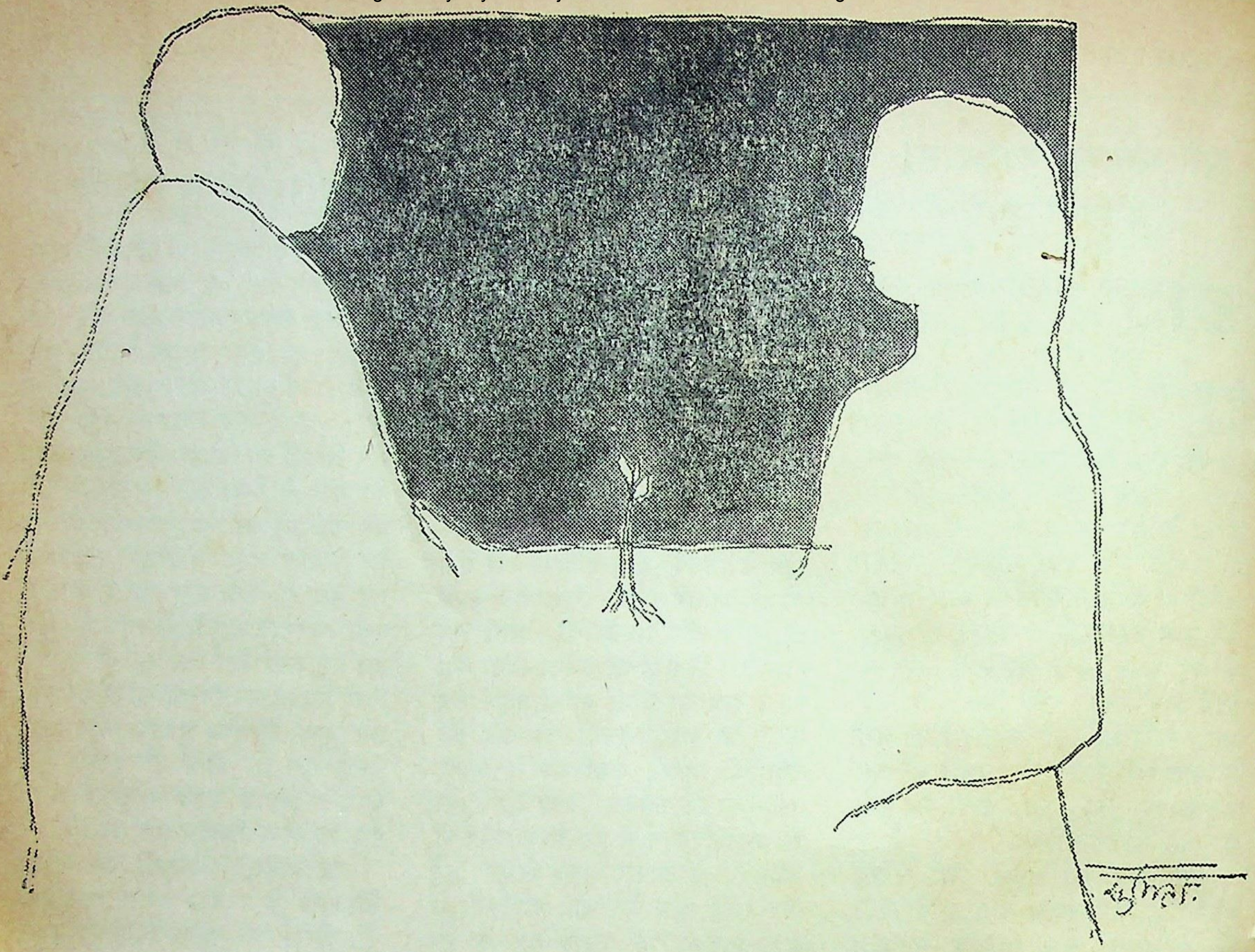

परास्त

• नवनीत मिश्र

"निरे पगले हो तुम! उस औरत को लेकर तुम्हारे मन में ऐसा-वैसा कुछ आ भी गया था तो इतना बड़ा क्या अपराध हो गया था. उस बात को लेकर कुछ दिन अबोला ठाने रहती, फिर अपने आप ठीक हो जाती!" पति-पत्नी संबंधों के एक सर्वथा अछूते पक्ष का उद्घाटन करती मार्मिक कथा—

ताई को अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ. कई क्षण लग गये उस चेहरे को पहचानने में. शिनाख्त कर चुकने के बाद भी कितनी देर तो जड़ बनी खड़ी रह गयीं.

जड़ता टूटी तो ताया से लिपटकर फूट पड़ीं. ताई का मन किया कि चीख-चीखकर सारे अहाते को सिर पर उठा लें, "देखो कौन लौट आया है." मगर ताई रोते रहने के अलावा और कुछ नहीं कर पा रही थीं. ताई देखती रह गयीं. ताया के चेहरे पर जगह-जगह उम्र की नोच-खसोट के निशान, लटक आये थुल-थुल मांस के आकार, गिर गये बालों की वजह से खाली हो गया सिर और अब भी शर्मिंदगी और अपराधबोध से झुकी-झुकी जाती आंखें. ताई ने इन बेधनेवाली आंखों को जब अंतिम बार देखा था, तब भी शर्म के बावजूद उनका पैनापन जरा भी कम नहीं हुआ था. आंखों में आंखें डालकर बात करना ताया के व्यक्तित्व का एक प्रमुख गुण हुआ करता था. ताया के अंदर की ईमानदारी उनकी आंखों से फूटा करती थी. ताई ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हैं, पर आंखों को पढ़ने के लिए क्या किसी स्कूल में जाना होता है? इस समय ताया की आंखों का झुका होना ताई को अंदर तक छीलकर रख गया.

सोलह वर्ष बाद घर लौटे ताया की आंखों पर ताई ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पपड़ा गये होंठ रख देने चाहे. एक कोशिश करनी चाही ताया की उदासी को पी जाने की, मगर. . .

सोलह वर्ष पहले ताया ऐसे नहीं हुआ करते थे. अपने क्रोध और दोटूक बात के लिए आसपास के मोहल्लों तक में प्रसिद्ध ताया सामनेवाले के मुंह पर थप्पड़-सा मार देते, "उस ब्राह्मण के रक्त में कोई दोष होगा, जिसे क्रोध नहीं आता." इसी तरह के फतवे देते हुए ताया सबको निस्तेज और निर्वीर्य कर दिया करते, एकदम पक्के शक्ति के उपासक. किसी पर हाथ भी छोड़ते तो 'मां तेरी रक्षा करें' के वाक्य के साथ. ताया से ज्यादा बात करने का साहस कोई नहीं जुटा पाता. ताई के वजन पर उनको 'ताया' नाम देने के बाद अहाते के मसखरे लड़के एक लंबे समय तक उनके सामने पड़ने से बचते रहे. जाने किसका इंटरव्यू हो जाये. फिर ताया यह तो सुनेंगे नहीं कि 'मैंने नहीं, उसने कहा था', लेकिन जब ताया ने लड़कों का दिया हुआ यह नाम सहर्ष स्वीकार कर लिया और ठहाका लगाकर हंस पड़े, तब कहीं आतंक के बादल छंटे थे.

ताया मुंहअंधेरे बाल्टी भर-भर के तहलका-सा मचाते हुए नहाते, गायत्री मंत्र बुदबुदाते और देर तक सोते रहनेवाले अपने लड़कों को घुड़कते जाते. लड़के भी जैसे घुड़के जाने की ही प्रतीक्षा कर रहे हों, एकदम से उछलकर खड़े हो जाते. ताई लड़कों के आगे ढाल बनकर खड़ी होने की कोशिश करतीं, "तुम जो जी में आये करो, लड़कों को क्यों परेशान करते हो?" और ताया 'अब औरतों से बात कौन करे' के अंदाज में 'ऊंह' करते और चुप रहते. उनका मानना था कि औरतों से बहस नहीं करनी चाहिए. उनका कहना था कि औरतों के अगर नाक न हो तो. . . ताया के अक्खड़पन से दोस्त तो एक भी नहीं बना. हां, दुश्मनों की संख्या रोज बढ़ती गयी. ऑफिस में भी बस अपने काम से काम. अब उन्हें कौन समझाता कि आज के जमाने में अपने काम से काम रखनेवाला ही सबसे ज्यादा पिटता है.

एक दिन जब ऑफिस में उन्हें गबन के मामले में फंसाकर मुअत्तल किये जाने की सूचना दी गयी, तब लगा कि वह निहत्थे हैं और उनके चारों ओर सशस्त्र लड़ाकुओं की भीड़ बढ़ी चली आ रही है.

मुकदमा चला. ताया निर्दोष घोषित किये गये. ताया ने एक हाथ से अपनी बहाली का कागज थामा था और दूसरे हाथ से इस्तीफा ऑफिसर के मुंह पर खींचकर मारा था, "लो, पुरुष हूं. इससे चार गुना पैसा कमाने का पुरुषार्थ मां ने मुझे दिया है."

मुअत्तली के दौरान अपनी सारी जमा-पूंजी खाकर खत्म कर चुकने के बाद पैसे-पैसे के लिए किसी हद तक मोहताज हो गये ताया ने ऐंठ का दामन मजबूती से थामे रखा. ताई और लड़के सन्नाटे में आ गये थे. सब ने एक स्वर से एतराज किया था, पर ताया ने फैसला सुना दिया था, "मुकदमा जीतना एक बात है और लोगों का अटूट विश्वास पाते रहना दूसरी बात है. मां जानती है कि मैंने एक कानी कौड़ी इधर से उधर नहीं की, लेकिन शक की निगाहों से देखा जाना मैं कतई पसंद नहीं करूंगा. तुम सबको पैसा चाहिए न? वह तुम्हें मिलेगा."

ताया ने अपनी साख का भरपूर लाभ उठाया. जहां से जितना कर्ज मिला, लिया और बकाया तनख्वाह की सारी पूंजी लगा दी. अपने दो कमरोंवाले छोटे से मकान के सामने खाली पड़ी जमीन खरीदी और उस पर अपने पुरुषार्थ के भवन खड़े किये. तंगहाली के दुर्गम रास्तों को पार कर समृद्धि के शिखर पर सीना तान कर खड़े हो गये, सचमुच पुरुष सिद्ध हुए. चार गुना ज्यादा कमाकर दिखा दिया. ताया एक दर्जन मकानों के मालिक बन गये.

अक्सर ताई कहतीं, "आदमी हो तो तुम जैसा. टूटने को तैयार हो, पर झुकने को नहीं."

ताया सुनते. उनको ये बातें कुछ वैसी ही लगतीं, जैसे अखाड़े में खड़े विजयी पहलवान से कोई बच्चा जाकर उसकी ताकत की प्रशंसा करने लगे.

मगर ताया को जल्दी ही एक बड़ी पराजय का सामना करना पड़ा था. उसके मन के अभेद्य दुर्ग में वह कृष्णकली कब नकबजनी कर गयी, इसका पता ताया को भी नहीं लग सका. शायद पहली ईंट उसी दिन खिसक गयी थी, जब किराये के लिए मकान देखने के बाद श्यामवर्णा दमयंती दत्त ने पेशगी रुपये उनकी ओर बढ़ाते हुए साधिकार कहा था, "लीजिए, मैं अपने घर में खड़ी होकर आपको पहले महीने का एडवांस दे रही हूं."

इस एक वाक्य में ऐसा तो कुछ नहीं था कि ताया जैसा संयमी आदमी कुछ हार जाने जैसा महसूस करता, पर हुआ तो ऐसा ही. मकान दिखाने के बाद ताया आदी थे आनेवाले की अनुनय-विनय सुनने के बाद इठलाने के. पहली बार ऐसा हुआ था कि जैसे किसी ने उनके जनेऊ से अधिकारपूर्वक अपने मतलब की चाबी खोली ली. ताया, जिन्होंने हमेशा सबको अपने ही दरबार में बुलाकर न्याय किया, अब जरा-सी बातें तय करने के लिए दययंती दत्त के घर में देखे जाने लगे. बालू और सीमेंट का अनुपात ताया से ज्यादा अच्छा कौन समझ सकता था, पर दमयंती दत्त को अपने मकान की दीवारों के उखड़ते पलस्तर का पता बाद में चलता, ताया उनके घर में दीवारों पर अंगुलियां रगड़ते पहले दिखने लगे. मिस्टर दत्त के दिन भर के दौरे पर निकल जाने के बाद दमयंती दत्त नहीं, ताया अकेलापन महसूस करने लगे थे.

ताया हार गये थे. दयमंती दत्त से परास्त हो गये थे, एकदम निहत्थे हो गये थे. ताया की आंखों में निर्भीकता की जगह एक चौकन्नेपन ने ले ली थी. किसी को जोर से डांटना भी जैसे भूल गये थे. हनुमान चालीसा गुनगुनाते रहने वाले ताया को गजलें पसंद आने लगी थीं. मार्च पास्ट की मुद्रा में चलते आगे थे, पर गरदन दमयंती दत्त के मकान की ओर घूमी रहने लगी थी. औरतों के बारे में उनकी राय एकदम से बिलकुल बदल गयी थी. ताई से कहने लगे थे, "औरतें न हों तो सारे घर सिर्फ मकान बनकर रह जायें."

ताई सुनती रहतीं. उन्हें ये बातें कुछ वैसी लगने लगी थीं, जैसे कोई बाजीगर हाथ की सफाई की तरफ से ध्यान हटाने के लिए लच्छेदार बातों की धूल उड़ाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराये पर मकान उठाने के बाद ताई के लिए रोज-रोज की तू-तू मैं-मैं एक सामान्य बात हो गयी थी.

एक तो मकान मालिक और किरायेदार का सांप-नेवले का रिश्ता और ऊपर से ताया के बिष बीज जो फसल दें... एक दिन सारे अहाते ने देखा.

ताई और दमयंती दत्त के बीच घमासान हो रहा था. दूसरे के फटे में पैर न फंसे, इस सतर्कता को बरतने के साथ साथ, फटा हुआ देख भी लें, इस उत्सुकता को लिये हुए सभी मकानों की खिड़कियां लापरवाही का ढोंग करती हुई थोड़ी खुल गयीं.

शुरुआत हुई थी नलों के खुल जाने की वजह से दमयंती दत्त को होने वाली पानी की कठिनाइयों से, मगर 'बड़ी आयी घन्ना सेठ बन के रोआ झाड़ने' के गलियारे से होती हुई बात चरित्र के खुले मैदान में आ गयी.

"तू अपने को देख. तभी तो तेरा आदमी सारे दिन दौरे के नाम पे कहां-कहां छुछुआता घूमता है."

"अरे जबान संभाल कर बात करना. अभी कह दूंगी तो सीधी दर में घुस जाओगी."

"कह दे, कह दे. मैं भी सुनूं."

"अरे, उस दिन उमर का खयाल करके छोड़ दिया तेरे आदमी को, नहीं तो जूते मार के निकाल देती घर से. आया था बिजली का मीटर पढ़ने और साला बकवास करने लगा."

ताई ने झपटकर दमयंती दत्त के बालों को मुट्ठी में भींच लिया. "बता साली, छिनाल, क्या कहा था मेरे आदमी ने तुझसे?" ताई के मन में पिछले कुछ महीने से पलकर बड़े हो गये संदेह के कीड़े एकदम से बिलबिला उठे.

"तो सुन, तेरे आदमी ने मुझसे कहा था कि मेरी बीवी तो एकदम सपाट दीवार है. तेरे जैसे गुंबद उसके पास कहां! और सुनेगी?"

ताई के हाथों से दमयंती दत्त के बालों की पकड़ छूट गयी. धींगामुश्ती में जमीन पर गिर पड़े आंचल को सहेजने के लिए हाथ उठे और आधी दूर जाकर लौट आये. अब छिपाने को क्या था? खिड़कियों ने मुंदना शुरू कर दिया था.

ताई सबके सामने जैसे निर्वस्त्र-सी खड़ी रह गयी थीं. अंधेरे कमरे में बैठी ताई को लगता कि अब वह बाहर निकल कर कभी किसी के सामने नहीं जा सकेंगी. उन्हें लगा था कि औरत एक नर के लिए मादा है. और मादा भी तब, जब वह मांसपिंड हो. मांस का लोथड़ा न हो तो औरत को कौन औरत माने? दमयंती दत्त के घने बालों को लगातार पकड़े रहने से ताई की अंगुलियों में पैदा हो गया दर्द तो खत्म हो गया था, लेकिन दिल में छिपी हुई एक बहुत पुरानी कसक ताजी हो उठी थी. उन्हें विश्वास हो गया था कि दुनिया के सारे पुरुष एक जैसे होते हैं.

उन्हें याद हो गया कि पहली रात को पति कैसे बिना एक भी शब्द बोले गुंबद टटोलने लगे थे, ठीक किसी एक व्यापारी की तरह. ताई को विश्वास हो गया था कि इतनी रातों में उन्हें जो कुछ मिला है, वह सब किन्हीं गुंबदों की यादों को मिला है. अपनी भावना ग्रंथि की धारदार तलवारों से पहले से ही बिंधी ताई पागलों की तरह अपने सीने पर घूंसे मारती रही थीं.

इस सारे कांड के समय ताया नहीं थे. सारे मकानों को चर्चा का एक बहुआयामी विषय मिल गया था. चाहे दमयंती दत्त के चरित्र पर बातें करो, चाहे ताया के बारे में. मन हो तो दुखियारी ताई पर चू-चू की आवाजें निकाल लो और चाहे दावे करना शुरू कर दो कि अब दमयंती दत्त और उसके पति

लघुकथा

विकल्प

▣ सूरज प्रकाश

वह भिखारिन थी. होश संभालते ही उसने भीख मांगना शुरू कर दिया था. भीख मांगते समय उसे हर किस्म के ताने सुनने पड़ते थे, गालियां सुननी पड़ती थीं, पर पेट की भूख और बरसों से भीख मांगने की आदत के आगे उसने कुछ न जाना था. रोज की तरह वह आज भी भीख मांगने निकली. एक पनवाड़ी की दूकान पर खड़े नौजवान के आगे उसने भीख के लिए हाथ बढ़ाया. नौजवान ने उसके फटे चीथड़ों से झांकते उसके सुडौल बदन को आंखों ही आंखों में तौला. आंख मारते हुए उसने व्यंग्य कसा, "अरी, क्यूं पांच-पांच दस-दस पैसे के लिए अपनी जवानी बरबाद कर रही है. जा, किसी कोठे पे बैठ जा. सौ-पचास रोज कमायेगी. कहे तो पहला ग्राहक मैं ही बन जाऊं." यह कहकर उसने उसे पांच का नया नोट दिखाया.

वह वेश्या थी. उसे खुद पता नहीं, कब से धंधा करती आ रही थी. उसे तो इतना पता है, रात भर देह नुचवाने के बाद उसे जो मिलता है, उससे न तो उसका कल सुधरा था, न आज ही सुधरा है. आनेवाला कल तो उसने जाना ही न था.

अब वह बूढ़ी हो चली थी. कई दिन कोई ग्राहक न फंसता. रोशनी में तो कोई उसकी तरफ देखता भी नहीं. अंधेरे में भी अगर कोई नशेड़ी-गंजेड़ी फंस जाता तो वह संभाल न पाती. एक दिन बड़ी मुश्किल से अंधेरे में एक ग्राहक पटाया. अभी ग्राहक ने उसके बदन पर हाथ फेरना शुरू ही किया था कि वह चौंका. जेब से टार्च निकाली और उसके बाद उसके चेहरे पर रोशनी फेंकी. उसका चेहरा देखते ही बिदका और अपने कपड़े झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ—"साली, रंडियों के पेशे को बदनाम करती है...अब कुछ नहीं रहा तो भीख मांग ले..." और तभी अंधेरे में एक सिक्का जमीन पर गिरने की आवाज आयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का क्या होगा. और इस सबके ऊपर सभी मकानों में एक बड़े विस्फोट की प्रतीक्षा शुरू हो गयी थी. ताया आयेंगे, दत्त साहब को बुलाया जायेगा और फिर आज जो न हो जाये, कम है. कुछ लोगों के मन में योजनाएं बुनी जाने लगी थीं कि दत्त साहब के खाली होने वाले मकान को किसे दिलवाने की सिफारिश करनी है. कुछ लोगों की राय थी कि दमयंती दत्त ही बदचलन है, वरना ऐसी नंगी बात कोई औरत भला कैसे कह सकती है? कुछ लोग दबी जुबान कह रहे थे कि ताया भी जब कहीं नहीं जाते तो दमयंती दत्त के यहां ही क्यों आने-जाने लगे? लेकिन एक बात पर सब एकमत थे कि दमयंती दत्त ने अपने ऊपर आफत बुला ली है. ताया रात गये लौटे.

चौकन्नी खिड़कियों के पीछे एक एक-कर के बत्तियां बुझनी शुरू हो गयीं. अंधेरे में अपने को छिपाकर कई जोड़े सिर सीखचों से सटाकर प्रतीक्षा करने लगे.

"तुम्हें सुनाई नहीं दिया? कह रहा हूं, रेडियो बंद करो. बिनाका के बिना तुम्हारा खाना हजम नहीं होता." किसी खिड़की से डपटने का दबा हुआ स्वर उभरा.

"तुम अपनी खोपड़ी जरा एक तरफ रखो, मार घुसी आ रही हो खिड़की में."

"मम्मी, मुझे नहीं दिख रहा."

"काहे चिल्ला रही है? हटो वहां से, बंद करो खिड़की." कहनेवाली आवाज ने खासा चिल्लाकर कहा.

"दत्ता साऽऽब!" यह ताया की आवाज थी. डेढ़ घंटे की उबाऊ प्रतीक्षा करवाने के बाद ताया घर से निकले थे. खिड़कियों पर सांसों की सांय-सूंय के अलावा और कुछ सुनाई नहीं दे रहा था.

"दत्ता साहब नहीं हैं." दमयंती दत्त ने खिड़की के पर्दे को जरा-सा सरकाकर जवाब दिया.

"जरा आप यहां आइये."

"दत्ता साहब आयें तो उन्हीं से बात कीजिएगा." दमयंती दत्त ने खिड़की बंद करने के लिए गुटके हटाये.

"आप लोग कल सवेरे खाली कर दें तो अच्छा हो."

यह ताया की ही आवाज थी? लोगों को विश्वास करने में समय लगा. मकान खाली करने का नोटिस तो ताया बस एक वाक्य से दिया करते थे, "कल का सूर्योदय आप इस कैंपस में नहीं देखेंगे." कहने का मतलब था कि सूर्योदय रुक जाये तो और बात है, किरायेदार तो फिर नहीं रुक सकता.

कहां गयी ताया की कड़क आवाज? क्या हुआ है ताया को?

"इस महीने के तेईस दिनों का हमारा किराया अभी बाकी है. पूरा महीना रहने के बाद मकान खाली कर दिया जायेगा." दमयंती दत्त ने कहा और उपेक्षा के सबूत के तौर पर खिड़की के दोनों पल्ले एक दूसरे पर जोर से पटक दिये.

खिड़कियों पर सन्नाटा खिंच गया. इस औरत ने खुद अपनी मौत को दावत दे दी है. ताया ने शराफत का परिचय दिया और यह औरत. . .

ताया तेज कदमों से अपने मकान में चले गये. लोगों ने फिलहाल हो गयी शांति को तूफान से पहले की शांति माना और अगले प्रलयंकारी दृश्य की प्रतीक्षा करने लगे, लेकिन शांति की अवधि खिंचती ही चली गयी और आखिर में लोगों ने सारी उम्मीदें छोड़कर बिस्तर पर चले जाना ही बेहतर समझा. नींद आने तक हर कमरे के अंधेरे में उत्सुक सवाल भटकते रहे. सीले हुए पटाखों जैसे मामले को झेलकर लोग सारी उत्तेजना खो बैठे थे. कुछ इस उम्मीद को लेकर सोने की कोशिश कर रहे थे कि शायद अब अगले दिन ही कुछ भयानक होगा. सीखचों पर बैठे-बैठे अकड़ गयी देह को मरोड़ते लोग परेशान थे कि यह तो कोई बात नहीं हुई.

सवेरे जल्दी सोकर उठने के लिए रात में जल्दी सो जाने वाले ताया के कमरे से रात भर रोशनी आती रही. बीच-बीच में ताई का कोई ऊंचा स्वर सन्नाटे में उभरता और खो जाता.

ताई के सामने ताया किसी अपराधी बच्चे की तरह बैठे रह गये थे. यह क्या कर डाला उन्होंने? दमयंती दत्त ने उन्हें उस दिन दुत्कार दिया था, उनके मर जाने को इतना ही बहुत था और अब तो ताई और उनके बीच वह वाक्य दीवार की तरह अड़ गया था. और फिर उन्होंने वह बात इतने बाजारू ढंग से नहीं कही थी, जिस तरह से दमयंती दत्त ने उसका इस्तेमाल कर डाला था. उन्होंने तो यह कहा था. . . लेकिन अब उनमें इतना आत्मबल भी शेष नहीं बचा है कि वह उस बात को दोबारा अपने आप से भी दोहरा सकें. दमयंती दत्त के सामने परास्त हो जाने के लिए वह स्वयं को कभी क्षमा नहीं कर सकेंगे. दमयंती दत्त जैसी रूपगर्विता आज नहीं तो कल चली जायेगी, पर ताई का सामना वह कौन-सा चेहरा लेकर करेंगे? आत्मग्लानि में आकंठ डूबे ताया रोते हुए कितने दयनीय लग रहे थे. दयनीय वह तब भी कम नहीं हुए थे, जब उन्हें लगा था कि उनकी आंखों के सामने दमयंती दत्त के प्रति आसक्ति की छाया घिरती जा रही है.

उस रात के बाद गायत्री मंत्र, नहाने और लड़कों को घुड़कने की जो मिली-जुली आवाजें नहीं सुनाई दीं तो सोलह वर्षों तक नहीं सुनाई दीं. ताया सवेरा होते न होते कहीं चले गये थे.

और आज ताई को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ. कई पल लग गये उस चेहरे को पहचानने में. शिनाख्त कर चुकने के बाद भी कितनी देर तो जड़ बनी खड़ी रह गयीं. ताई तो वैसे भी अंदर से धीरे-धीरे निर्जीव होती चली गयी थीं. कहां चले गये होंगे? लेकिन चले क्यों गये? कैसे रह रहे होंगे? जैसे सवाल ताई अपने आप से पूछतीं और खुद ही कोई निरर्थक-सा जवाब दे लेती रही हैं. वक्त के साथ धीरे-धीरे सवाल उच्चरित होने बंद हो गये, सीने में घुमड़ने लगे. और उसके बाद ताई के पास सवाल नहीं रह गये थे. वह खुद एक सवाल बन गयी थीं. आवारा हो गये लड़कों के सामने, बहुत ज्यादा पक गये फल के उतर जाने जैसी कुवांरी बेटियों के सामने, अहाते की खुसपुसाहटों के निकट ताई एक सवाल से ज्यादा और क्या रह गयी थीं. सेना में भी एक अवधि होती है जिसके बाद लापता सैनिक को मृत घोषित कर दिया जाता है. ताई ने शायद अब, शायद अब कर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

भैंस किसकी

■ रामनारायण उपाध्याय

एक जमाना था, जब लोग कहते थे कि जिसकी लाठी, उसकी भैंस. अब न तो वह लाठी रही, जिससे भैंस को अपने कब्जे में कर लिया जाये और न ही इतना पैसा रहा कि भैंस खरीदी जा सके.

ऊजड़ गांव में ऊंट के तमाशे की तरह जब गरीब गांव में बैंक की शाखा खुली तो वह ऐसी लग रही थी, जैसे नंगे लड़के ने मखमल की टोपी पहन ली हो. मंच, माइक, माला, फोटो, भाषण और स्वल्पाहार के बाद बैंक का उद्घाटन हो गया.

सामने के बड़े हाल में बैंक का कार्यालय खुला था और पीछे बैंक के एक कोने में शाखा प्रबंधक के रहने की व्यवस्था तथा दूसरे कोने में चौकीदार की खोली थी. बीच में एक आंगन था. एक दिन लोगों ने देखा, शाखा प्रबंधक और चौकीदार के बीच वाले आंगन में एक भैंस बंधी थी. लोगों ने चौकीदार के भाग्य की सराहना की. बोले, "आदिवासी होने से तुम्हें बैंक की नौकरी मिली और साथ ही भैंस भी."

चौकीदार बोला, "भैंस को बांधने और छोड़ने का काम मैं करता हूं. उसका दूध दुहने और उस दूध को शहर बेचने का काम भी मेरा ही है. इसके लिए साहब मुझे विशेष इनाम देते हैं. एक दिन उन्होंने मुझसे कुछ कागजों पर दस्तखत लिये थे और कहा था, "अब हमारे बीच के आंगन में एक भैंस होगी. तुम्हें कभी दूध की जरूरत पड़े तो मांग लिया करना, लेकिन अगर कोई पूछे कि भैंस किसकी है, तो कह देना भैंस मेरी है. मैं नहीं जानता भैंस किसकी है." □

प्रतीक्षा की इस अवधि को बरसों लंबा खींचा और अंत में पस्त हो गयीं. बिंदी-सिंदूर छोड़ दिया. महीन आस जैसी एक कांच की चूड़ी जरूर उनकी ठूंठ होती कलाइयों में पड़ी रही.

सहसा ताई का मन टिकट की खिड़की के संकरे मोखों जैसा हो गया है, जिसमें से एक ही समय में सोलह साल की बातों के हाथ एक साथ निकल जाना चाहते हैं और इस उठापटक में एक भी हाथ उस पार नहीं जा पा रहा है.

ताया के जाने और आज अचानक इस तरह सामने आकर खड़े हो जाने के बीच ताई द्वारा अकेले उठाये गये दुःखों का एक घना जंगल पड़ता है. सोलह बरस के मनहूस दिन और सन्नाटी रातें पड़ती हैं. लड़के का तस्करी में गिरफ्तार होना पड़ता है. लड़की के पांव भारी होते हैं. लड़के द्वारा उसको पीटा जाना पड़ता है. एक लड़के का मर जाना पड़ता है.

इन सोलह वर्षों में ताई ने जाना है कि सारे घर को चलाने वाली, सहेजने वाली एक औरत मेले में अंगुली छूट गये बच्चे जैसी कैसे हो जाती है. इन सोलह वर्षों में ताई ने यह भी समझा है कि तिल-तिल छीजती एक औरत कितनी मौतें मरती है. कितना बदल गया है सब कुछ.

रूपसी के कदमों में बिछे हुए पुरुष, मेरी हार को जीत में बदलने की सामर्थ्य तुममें शेष ही कहां थी. पता नहीं तुम कैसे सुन सके थे कि मकान महीना पूरा होने पर ही खाली किया जायेगा. तुम, एक दमयंती दत्त क्या, इतने सारे लोगों की निगाहों का कौर बनाकर चल दिये? अपने साये का भी सहारा खींच लिया तुमने? तुम्हें गुपचुप होते आपस के इशारों को समझने की मजबूरी से नहीं गुजरना पड़ा, तुम्हें उन हालात का सामना नहीं करना पड़ा, जिनके लिए एक अकेली औरत बहद अपर्याप्त होती है, तुम्हें बेटों के राज्य का नर्क नहीं भोगना पड़ा. तुमने यह क्या किया है?

जाने कहां-कहां भटकते रहे हो इतने बरसों तक?

मेरी यह थेथर जिंदगी साक्षी है, मैंने एक पल भी तुम्हारी याद के बगैर नहीं गुजारा है. जिंदगी के सोलह बरस किसी से छीन लिये जायें, यह कोई साधारण बात नहीं है, लेकिन आज लग रहा है जैसे मुझे इतने बरसों का मुआवजा मिल गया. तुम आ गये, लगा जैसे मेरा बचपन लौट आया.

निरे पगले हो तुम. उस औरत को लेकर तुम्हारे मन में एसा-वैसा कुछ आ भी गया था तो इतना बड़ा अपराध क्या हो गया था? उस बात को लेकर कुछ दिन अबोला ठाने रहती, फिर अपने आप ठीक हो जाती. हां, बुरी लगने वाली बात थी, तुमसे शिकायत थी, जो जी में आया, कहा. अब यह उम्मीद तो दुनिया की किसी औरत से नहीं की जा सकती कि वह किसी दूसरी औरत को अपने घर में आ जाने की स्वीकृति दे दे. तुम क्या समझते हो, मुझमें जो कमी है, उसका मुझे पता नहीं था? मगर मैं क्या करती, मेरा क्या वश था उस पर, मैं कम बुद्धि की औरत तुम्हें क्या समझाऊंगी. औरत जिस्म को प्यार करने का जरिया बहुत कम समय के लिए ही बनाती है. फिर तो सारा कुछ इस जिस्म से बहुत ऊपर उठ जाता है. जिस्म तो एक पुल भर है, उस बहुत ऊपर तक जाने के लिए. तुम लौट आये हो, जैसे मेरा विश्वास, मेरा औरतपन लौट आया है. ताई के मन में बातों के बवंडर उठ रहे थे. लड़की की किताब में कभी उसने एक प्रेमपत्र पकड़ा था, जिसमें उसके प्रेमी ने लिखा था कि कोई ऐसी मशीन क्यों नहीं बनती, जिसको लगा देने से किसी के मन की सारी बातें बिना बोले दूसरा आदमी जान ले. उस समय की बेहद बचकानी भावुकता से भरी यह बात ताई को सहसा याद हो आयी. उनको भी लगा कि कोई कहने पर ही आ जाये, तब भी क्या सब कुछ कहा जा सकता है?

ताई ने ताया के हाथों को अपने हाथों में जकड़ लिया. ताई ने पहली बार होठों के बंद खोले, पूछना चाहा कि अब तो कभी इस तरह नहीं छोड़ जाओगे मुझे? मगर ताई की पकड़ एकाएक ढीली पड़ गयी है. ताया ने सबसे पहले पूछा, "क्या वो लोग महीना पूरा होते ही चले गये थे?" □

● आकाशवाणी केंद्र, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरी नींद

सुभाष अखिल

जीवन का एक झूठ कितने फरेबों को जन्म देता है?—पति-पत्नी के बीच पनपते प्रेम और विष को रेखांकित करती कहानी—

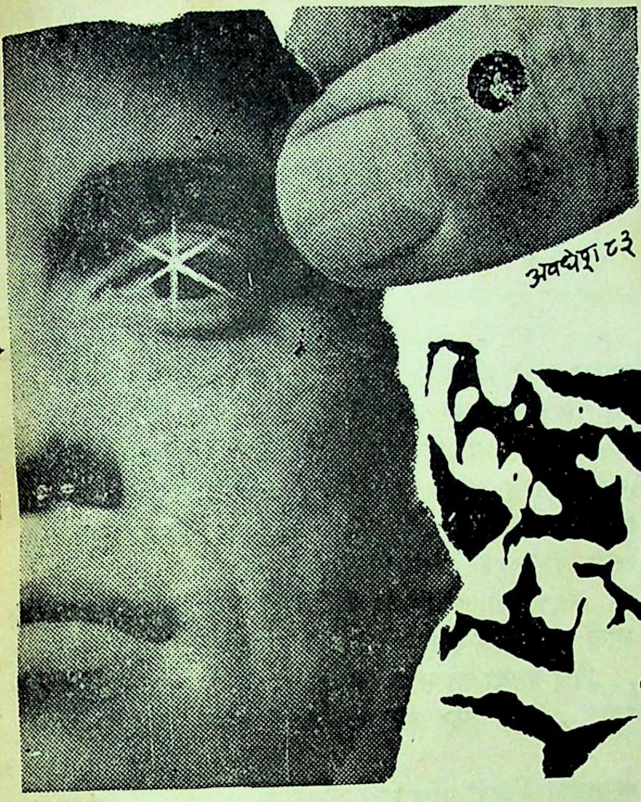

बुद्धू इतने बौड़म नहीं थे जो अपनी जोरू के पांव न पहचानते कि किधर पड़ रहे हैं, मगर ऊधम भगत ने जो मिरची तोड़ी थी, यह तो उसी की चिरमिराहट थी. . . अब ससुरी गू खाती हो तो मौज में खाये, मगर खाये तो छप्पर में. बुधवा यह कतई बरदाश्त नहीं करेंगे कि वह उन्हीं की छाती पे बैठ के मूंग दले. गांव भर में नौटंकी करती फिरे. न बूढ़ों-बुजुर्गों का परदा करे, न बालक-नन्हों का खयाल. जो करमजली इसी तरयों करती रही तो हाथ-पांव काट के जोहड़ में डाल देंगे, बुधवा.

वे सोचने लगते कि छज्जू धीमर का, बालिस्त भर का लौंडा, ससुरी का, आंखों में काजल डाले, इन दिनों उन्हीं के घर के पास मंडराने लगा है. स्साला, हरामखोर, उन्हीं के सामने पैदा हुआ, उन्हीं के सामने धूल-मिट्टी में नंगा लोटता रहा, अब उन्हीं की जोरू से इस्क फरमाने चला है!

ब्याह से पहले ही उन्हें यह अंदेसा था कि वे औरत के लायक नहीं हैं, इसलिए जब भी घर की बड़ी-बूढ़ियों ने उन्हें अपनी उम्र का हवाला देकर दादी-परदादी बनवा देने को कहा तो कन्नी काट गये थे, बुधवा. तरह-तरह की बहानेबाजियां जोड़ते-लगाते रहे, मगर किसी से कुछ कहते नहीं बन पा रहा था. इसलिए शरमा-शरमी घोड़ी चढ़ गये और ब्याह लाये निहाली को. अब ब्याह तो लाये मगर महसूस यूं हुआ कि जैसे एक और बड़ी मुसीबत साथ बांध लाये हों.

एक तो वैसे ही बुधवा रीते हुए थे, ब्याह को टालते-टालते और भी निरे ठूंठ हो गये थे. फिर, घरवालों ने जोरू भी देखी तो खिलती कली. बुधवा के घर पांव रखते ही निहाली एक ही रात में खिलकर जवान हो गयी थी. मगर वे टालते रहे. निहाली और जवान होती चली गयी. वह उस नागिन के फन की तरह फैली और फैलती चली गयी कि जिसे यदि समय रहते न कुचला जाये तो उसे डसे बिना नहीं छोड़ती. बुद्धू भी कब तक बचते? जब देखा कि न तो वे बच सकते हैं और न ही कुचल सकते हैं तो हथियार डाल दिये. निहाली तब नयी थी. इसलिए उस समय चुप लगा गयी. मगर जैसे-जैसे उसका जहर और बढ़ने लगा, फन और फैलने लगा, निहाली फुंफकारती. बुधवा सहम जाते. वह घिनौने ढंग से अपना जिस्म उघाड़ती, सहलाती और ढंक लेती.

बुधवा एक मरतबा देखते, फिर सिर झुका लेते.

निहाली थूक देती. बुधवा फिर देखते. और जो इस बार देखते तो देखते ही चले जाते.

निहाली अपने किसी अज्ञात जन्म के, अज्ञात कर्मों को कोसती, वहां से उठ जाती.

किंतु जब घर की औरतों ने निपूती निहाली को कोसना शुरू किया तो उसका फन तन गया, जैसे बुधवा को हर तरफ से घेरकर वह कह रही हो कि देखती हूं, अब तू कैसे बचेगा!

बुधवा तब बहुत फड़फड़ाये थे. जैसे चील के मुंह में फंसा चिड़िया का नवजात बच्चा. और चील भी ऐसी कि न तो छोड़ती और न ही चबाकर नीचे उतार लेती. बुधवा गिड़-गिड़ाकर फिर एक बार उसे बहकाने की कोशिश करते, "मरद की इज्जत उसके घर-परिवार से होय करे है निहालो. और घर की इज्जत होय करे है लुगाई के हाथों में. . .तेरा दरद मैं समझूं हूं. . .उस पर ये बुढ्ढी-ठेरी भी तेरा दिमाग खाये जायें. . .संतोस धरे जा री निहालो. . .पता न कौन जनम के करमों का भोग है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद वे मतलब की बात पर आते, "देखिओ री, अब जो दुख है, सो तो है ही. पर अपने मरद की इज्जत बचाये रखना भी तो औरत का धरम है."

निहाली का मन होता कि कस कर ठहाका लगाये.

बुधवा फिर बहकाते, "सुने जा री! बूढ़ियों की,. . .तू ध्यान ही मत ना दिये कर."

"अर जो ऊ मुझ में दोस कहेंगी तब?" चील थोड़ा दबाती तो बच्चा और जोर से फड़फड़ाने लगता.

"किसी भी तरयों संभाल लियो, पर भगवान की सौं, थू मत ना कह दियो री कि इसमें मेरा खोट है. . . अब इतने बरस हो गये इस गांव में रहते, बरसों में इज्जत-आबरू बनायी है, पर जो तू मुंह खोल देगी तो बड़ी जग हंसाई होगी. . ."

"हाय राम!. . .तुम क्यों मरो, मरें तुम्हारे दुश्मन." निहाली बुधवा को सहलाती, जैसे चील उस चिड़िया के घायल बच्चे को अपनी चोंच से मुक्त करके यह जायजा लेना चाहे कि देखें—इसमें उड़ने की कितनी ताकत और बाकी है.

"जो मरूं न तो फिर क्या करूं?"

उस दिन उन्हें पस्त होता देख निहाली ने बड़ी सतर्कता के साथ फुंफकारा था, "अब तुम्हारे करने को और रह क्या गया है?. . .अब तो जो करना है, मैं ही करूंगी."

"तू क्या करेगी?" बुधवा संभल गये...

निहाली ने फिर पैंतरा बदला, "मेरे कहे पे चलोगे तो सब ठीक हो जायेगा." थोड़ा सोचकर फिर बोली, "बस, तुम अपना ध्यान भजन-कीर्तन में लगाये रहो, बाकी मैं निपट लूंगी."

बात सचमुच बुधवा की समझ में बैठ गयी थी. इसलिए मुंह-अंधेरे खेत पर निकल जाते और दिन चढ़े तक जुताई-निराई, कटाई के कामों से निबटकर हनुमान मंदिर पर आ बैठते. निहाली जो साथ बांध देती, उसे निगलते फिर मंदिर के कुएं से डोल भर पानी खींच नीचे उतारते. लौटते और पीपल तले खटिया डाल लठैत अधम भगत को पुकार मारते. भगज्जी भी समझने लगे थे कि बुढ्ढ डकार चुका होगा और अब उसे चिलम चाहिये लिहाजा वे तसले से आंच निकाल चिलम तैयार करते और बुधवा के पास आ बैठते.

दिन ढले उठते और इस बार की चिलम खुद तैयार करते. तभी संध्या-पूजा का वक्त हो जाता. ऊधम भगत आरती की तैयारी में लगते और बुधवा कनमैलिया घुसेड़े अपना कान कुरेदते रहते, गोया कि निहाली इस बार उनके दिमाग में घुसने के बजाए कान में घुस गयी हो और वे उसे जतन से पकड़कर बाहर खींच लेना चाहते हों. ऐसा उन्हें इसलिए लगता कि ऊधम के बजाय घंटे-घड़ियाल निहाली की उस सलाह का स्मरन दिला देते थे कि अब बुढ्ढ अपना ध्यान भजन-कीर्तन में लगाये रहें, बाकी सब वह कर लेगी.

"स्साली!" बुधवा फुसफुसाते, "बज्जात!"

भंड़ास निकल जाती तो उठकर मंदर में आ खड़े होते. ऊधम भगत के पीछे खड़े, हाथ जोड़े, आंखें बंद कर लेते.

देर रात बुधवा घर लौटते तो निहाली को काफी हल्का पाते. नहाई-धोई निहाली के उजले-तपे चेहरे पर ढेर-सी ताजगी उन्हें नजर आती. वह खुशी-खुशी उन्हें खाना परोसती और सामने बैठ पंखा झलती रहती. बुधवा चोर नजरों से उसकी तरफ देखते तो तरह-तरह के खयाल उनके मन को आ घेरते. . .

अचानक निहाली उनकी तरफ देख लेती तो बुधवा सकपका जाते. हड़बड़ा जाने से उनकी जीभ ऊपर-नीचे के दांतों में दब जाती.

बाहर के घेर में अपनी खटिया डाले बुधवा ग्रहों की गति समझने में ही काफी रात बिता देते. ऐसी ही एक रात बुधवा आंखें बंद किये ग्रह-दशा समझने में उलझे हुए थे कि घर के दालान से कुछ आहट पाकर सतर्क हो गये. दायें हाथ से सिरहाने रखी लठिया टटोली, मगर निहाली का स्मरन आते ही उन्हें ग्रहदशा कुछ-कुछ समझ आने लगी. इसलिए लठिया की पकड़ ढीली छोड़कर उन्होंने शरीर को भी ढीला छोड़ दिया और गहरी नींद सोये रहने का स्वांग भरने लगे. लिहाफ ऊपर तक ओढ़कर उन्होंने मुंह ढंक लिया था और बायीं करवट लेटकर, लिहाफ के अंदर खुली अपनी आंखें चौखट पर लगा दी थीं.

चांद पूरा जवान था इसलिए लिहाफ से ढंकी बुधवा की आंखें साफ-साफ देख रही थीं...निहाली ने पहले अंदर से झांका. . .फिर बुधवा को सोया समझ बहुत धीरे से एक पांव बाहर रखा. . .और फिर समूचा जिस्म बाहर खिसका लिया.

तभी टिटिहरी बोल उठी. निहाली सहम गयी. बुधवा चु[illegible] पड़े रहे. निहाली ने कुछ क्षण बुधवा की तरफ देख[illegible]

फिर बायें हाथ में पकड़े, पानी के भरे लोटे को दा[illegible] हाथ के हवाले किया और सधे हुए कदमों से घर की चाहर-दीवारी की तरफ बढ़ ली. . .पाजेब की आवाज न आने पर बुधवा ने ध्यान से देखा—निहाली के दोनों पांव एकदम नंगे थे. . . .बजाये घेर का फाटक खोलकर जाने के निहाली उपलों के बोरे पर चढ़ी और दीवार फांद गयी. . .

"हरामजादी!" बुधवा धीमे से बड़बड़ाये और उठ-कर खटिया पर बैठ गये. लठिया पर हाथ पड़ा तो हाथ की गिरफ्त कसती चली गयी. बुधवा ने खड़े होकर निहाली को धर पकड़ने की सोची, मगर उनके पांव जड़ हो गये थे, जैसे घुटनों तक जमीन में गाड़ दिये गये हों.

"डस गयी सुसरी छिनाल!" बुधवा फिर बड़बड़ाये थे और इस बार अपने दोनों हाथ घुटनों पर टिकाये, वे जैसे बैठे थे, बैठे ही रह गये.

टिटिहरी फिर बोली और बोलती चली गयी.

बुधवा फिर सारी रात नहीं सो सके.

सोचते रहे कि उन्हें क्या करना चाहिए. . .निहाली को मारें-पीटें, हाथ-पांव तोड़कर कुएं में धकेल दें या गंडासे से उसका सिर कलम करें और खेत में गाड़ दें. मगर बुढ्ढ कुछ नहीं कर सकते थे. उनके करने को अब रह भी क्या गया था. अब जो कुछ भी किया जा सकता था, निहाली कर ही रही थी. उनके लिए यही बेहतर था कि भजन-कीर्तन में अपना ध्यान लगायें.

बुधवा तड़पे और तड़पकर रह गये. करवटें बदलते और सोचते रहे कि क्यों न आत्महत्या ही कर डालें.

तभी घेर के बाहर कुछ आहट हुई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुधवा सतर्क हो गये.

उन्होंने पोजीशन ली और लिहाफ से मुंह ढंके निहाली के भीतर कूदने का इंतजार करने लगे. उन्होंने देखा कि घेर के पीछे से थोड़ा-सा सर उठाये निहाली ने अंदर झांका है. . . बुधवा को लाश समझ वह दीवार पर चढ़ी और धीरे से उपलों की बोरी पर पांव धरु नीचे उतर आयी. . .खूनी कदमों से चौखट की तरफ बढ़ी और फिर बेआहट, बेआवाज उसने समूचा जिस्म अंदर खिसका लिया.

चौखट की चूलें खुश्की की वजह से जरूर चरमराई थीं, मगर टुकड़ा-टुकड़ा आवाज में. किंतु बुधवा चुप पड़े रहे.

बहरहाल उन्होंने देख जरूर लिया था कि जब निहाली गयी थी तो उसका जिस्म गरम दूध की तरफ उफन रहा था और अब, जब लौटी तो जैसे पानी के छींटे मारकर उसके जिस्म का उफान उतार दिया गया लगता था.

कुछ दिन यही सिलसिला चलता रहा. रोज रात को चौखट की चूलें चरमरातीं टिटिहरी पहले बोलती और फिर चुप हो जाती, मगर बुधवा उसी तरह लाश बने पड़े रहते, हां, इतना अंतर अवश्य आ गया था कि बुधवा ने अब लिहाफ ओढ़कर टोह साधना छोड़ दिया था. वे हार गये हैं, यह तो स्पष्ट हो ही गया था, किंतु उनकी यह हार अपने प्रति है या निहाली के प्रति, इसका फैसला वे नहीं कर पा रहे थे.

तभी एक दिन लठैत ऊधम भगत ने मिरची तोड़ी थी, "क्यों रे बुद्धू, दिन भर खेत पर ही रह करे है या घर-आंगन का भी कुछ खयाल है?"

"क्यों, के हो गया?"

"देख भैया! मेरी बात का बुरा मत न मानिओ. पर कुछ यूं सुनने में आ रिआ है . . . मेरा मतलब है कि तनिक भाभी का खयाल भी रखे कर. . . आदमी की इज्जत ससुरी ऐसी रंग होय करे है भैया, जो एक बार फीका पड़ जाय, तो चाहे जो रंगरेज अपने सारे रंग के घोड़े खोल ले, पर रंग संभालना कतई दुस्कर हो जाय. . . रुपया-पैसा और जबान जोरू के फिसलने में ससुरी देर ही कितनी लगती है?"

बुधवा सब समझ गये थे.

यहां नासमझ बने रहने में कोई समझदारी नहीं थी. इसलिए ऊधम भगत से उन्होंने विनती की कि किसी भी तरयों इस मामले को यहीं दबाये और वचन दिया कि अब वे घर-आंगन का ख्याल भी रखेंगे. मगर घर-आंगन में जो कुछ हो रहा था, वह तो वे देख ही रहे थे. जो होना है, वह तो ही हो रहा है. अब यदि अपनी ही देख-रेख में होने लगेगा तो कौन आकास टूट के धरती पर आ पड़ेगा. उल्टे यह फायदा ही होगा कि गांव में बुधवा के कपड़े उतरने से बच जायेंगे.

निहाली के बच्चे का खयाल आया तो उनकी बगल में चींटी काट गयी. . . स्साला. . . हरामी! . . . फिंकवा देंगे उस गंदगी को किसी नाले-वाले में, मगर पालेंगे हरगिज नहीं . . . पर निहाली का खयाल आते ही बुधवा फिर सहम गये. सोचा चलो पल जायेगा सुसरा! उन्हें क्या? जो रांड जनेगी, वो अपने-आप पालेगी.

यह तो बाद का मामला था.

गांव भर के सारे तगड़े-गठीले नौजवान बुधवा की आंखों में आने-जाने लगे. पंडत का ज्ञान प्रकाश, मुसन्नी का सुमेरचंद, भड़वे का गिरधारी, छज्जू धीमर का. . . धुत. . . स्याला, अनार-कली की औलाद, जनखिया, हरामखोर. . . बुधवा आगे सोचने लगे. . . ऊधम लठैत . . . ऊधम . . . ऊं. . यहां पहुंचकर वे थोड़ा रुके. ऊधम भगत का नाम उन्हें कई मायनों में जंचने लगा. . . एक तो यह कि ऊधम उनके घर-आंगन की बात जानता ही है, दूसरे यह कि वह भी खासा तगड़ा, कसा हुआ लठैत है और तीसरे यह कि ऊधम हनुमान का लंगोट कसा भगत है. . . कल कहीं बात चल भी निकली तो कोई यकीन नहीं करेगा. . . पर क्या ऊधम निहाली पर हलाल होने को तैयार हो जायेगा.?

बुधवा के सामने निहाली आ खड़ी हुई. . . कसी, गदराई, पूरी जवान औरत. . . फिर हनुमान जी आये. . . बुधवा मन ही मन मुस्करा दिये... देखें कौन जीतता है?

हर तरफ सोचने के बाद मामला ऊधम पर ही तय बैठा. बस, निहाली और भगज्जी में जोड़ जमाना बाकी रह गया था.

बुधवा खुद काफी हल्का महसूस कर रहे थे. हालांकि उनकी लिहाफ से ढंकी आंखें बेसब्री से चौखट पर टिकी थीं, कान चौखट की चूलों के पीछे जाकर निहाली की मौजूदगी का अहसास टटोल रहे थे. टिटिहरी आज चुप थी.

पुरवा के झोंके अब भी बादलों को बहाकर ला रहे थे. थोड़ी देर बादलों में छिपे रहकर चांद फिर निकल आया था. उतना ही दूधिया, उतना ही सफेद.

आज टिटिहरी भी न जाने कहां चली गयी थी.

निहाली बुधवा की बगल में लेटी रही थी. बुधवा उसके बालों को सहलाते-सहलाते कब सो गये और कब निहाली उठकर भीतर चली गयी, वे नहीं जान पाए. उस बाकी बची रात बुधवा गहरी नींद सो सके थे. □

● द्वारा : 'पराग', 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

चलते-चलते

बहू को ससुराल में प्रसव हुआ. दस दिन बाद उसे काम करने का आदेश मिला. कमजोरी के कारण उसे चक्कर आने लगते तो वह जाकर सो जाती. सास बड़बड़ाती, "कोई नवई का पैदा नहीं किया, हमारे भी कभी बच्चे हुए होंगे!"

कुछ दिनों बाद उनकी लड़की को प्रसव हुआ. पंद्रह दिन के बाद भी वह बिस्तर से उठ न पाई. वे दुलारती हुई कह रही थीं, "कमजोरी तो रहेगी ही. आदमी से आदमी निकालना कोई हंसी खेल है बगा!" □

—हंस दीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

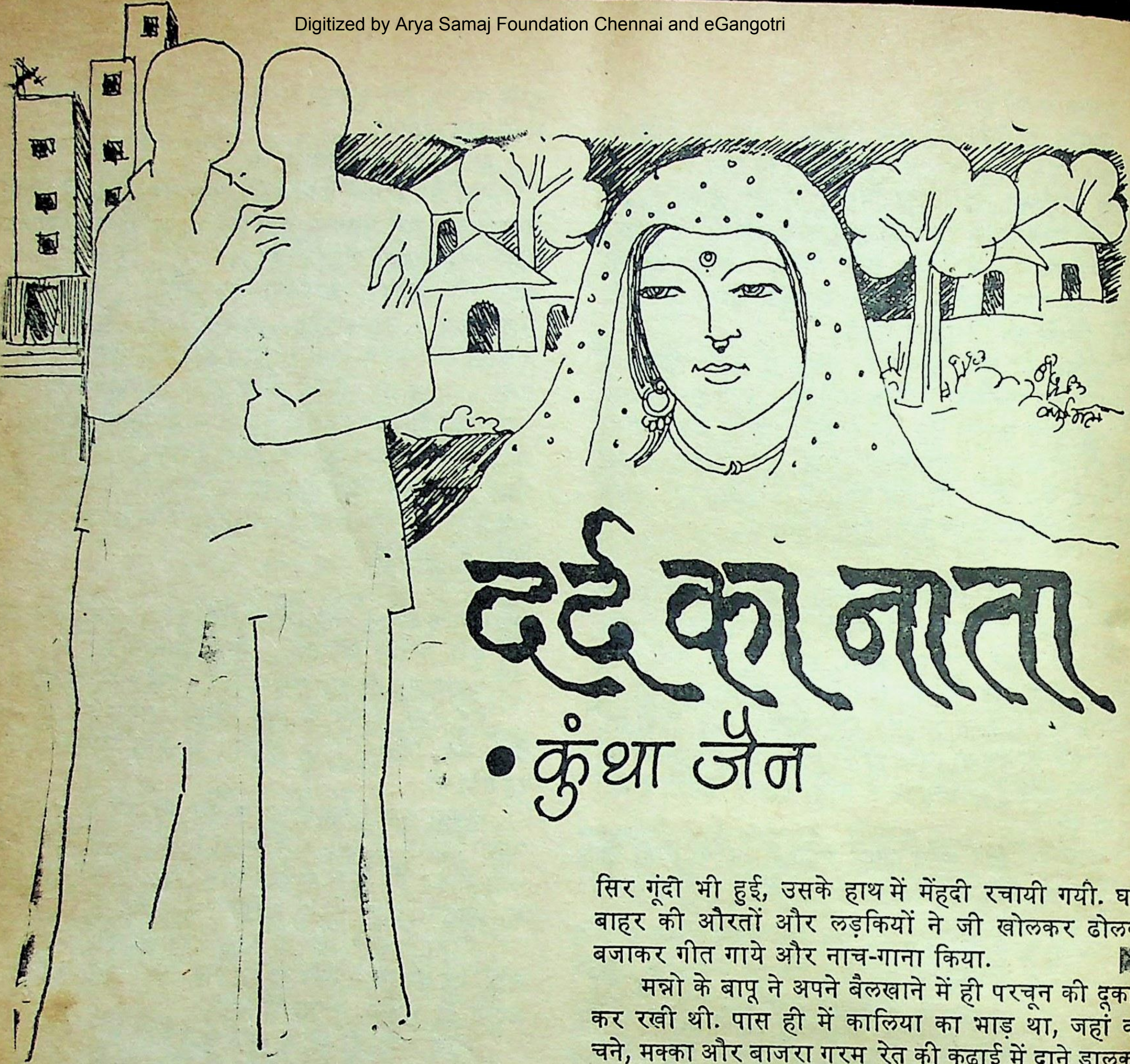

दर्द का नाता

• कुंथा जैन

आज के दिन चार साल पहले मेरी शादी हुई थी. मंसूरपुर के पंडित बंसीधर ने मेरी शादी का मूहूर्त निकालकर कहा था कि "चढ़ते माह की पूनो का दिन अति उत्तम है. किशोरी और मन्नो की जन्मपत्री बहुत अच्छी मिली है. भाग में बड़ा रुपया-पैसा और सुख है."

मेरी शादी पर मेरे ससुर सुखीराम ने गांव के पंचों, रिश्ते-नातेदारों और पूरी बिरादरी को पूरी, कचौरी और बरफी की दावत दिलायी थी. बापू ने मुजफ्फरनगर से बैंड-बाजा मंगाया था. मुखियाजी के यहां की घोड़ी सज-धजकर आयी थी. आधी रात को जब मन्नो की बिदा हुई तो उसके बाप ने डोली में बिठाकर विदा किया था. हमारे सारे रिश्तेदार धूमधाम से बैंडबाजा बजाते, गाते, नाचते-कूदते मन्नो का ब्याह कर अपने घर ले आये थे.

वह दो दिन हमारे घर रही.

उस दिन एक बजे दोपहर से शाम के पांच बजे तक, सारी गांव की औरतें हमारे घर आती रहीं और बहू को मुंह दिखाई, दान-दहेज की चर्चा होती रही. दो बजे मन्नो की सिर गूंदी भी हुई, उसके हाथ में मेंहदी रचायी गयी. घर-बाहर की औरतों और लड़कियों ने जी खोलकर ढोलकी बजाकर गीत गाये और नाच-गाना किया.

मन्नो के बापू ने अपने बैलखाने में ही परचून की दूकान कर रखी थी. पास ही में कालिया का भाड़ था, जहां वह चने, मक्का और बाजरा गरम रेत की कढ़ाई में दाने डालकर भूनकर उन्हें फुलाता था. सोंधी-सोंधी महक से सारा गलियारा महका रहता था. मन्नो उसे मामू कहती थी. अनाज के दाने भूनकर कालिया उन्हें सींकों से बने बोइयों में डालता जाता था. और बदले में कुछ पैसे और कुछ मुट्ठी अनाज रख लेता था. उसके भाड़ पर गेहूं भी भुनते हैं, जिनको हाथ की चक्की से पीसकर कालिया की घरवाली ताजा सत्तू और दालिया बारुमल मैनेजर साहब के यहां तीन रुपये किलो के हिसाब से दे आती है. मेरी शादी में उसने शहर से उसना चावल मांगकर मुरमुरे भूने थे और उसमें भुनी मूंगफली और बेसन के सेव और भुने चौले मिलाकर भाजा बनाया था, जो इलायची पड़ी चाय के साथ बारातियों को दिया था. गरम-गरम चाय के साथ वह कुरकुरा भाजा और चीनी और बताशे का मेल आज भी मुंह में चुनचुनाहट कर देता है.

कैसी अजीब-सी बात है कि आज सोते वक्त जब चार साल बाद मैं गौना कराने गांव जानेवाला हूं तो वे सारी बातें तस्वीर-सी बनकर मेरी आंखों, कानों, जुबान और दिमाग पर छा रही हैं—पर मन्नो का चेहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्द का नाता भी अजीब होता है. कई बार वह अपने से लगने वालों के बजाय उस आदमी से जोड़ देता है, जो हमें अपना दुश्मन लगता है, वरना क्या कारण था कि किशोरी किसी और के बजाय उसी पिल्लू के ही कंधों पर सिर रखकर अपने को हल्का कर पाता है, जिसने गौने के दिन उसका सारा सामान ही चुरा लिया था.

ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा. मैंने उसे देखा ही कहां था? मैं था अठारह साल का और वह ग्यारह की. गठड़ी-मुठड़ी बनी बैठी रही थी. गोदी में लेकर उसके मामा ने रात को फेरे कराये थे. हमारे घर में मां ने उसे सहारा देकर डोली से उतार लिया था और अपने पास ही जमीन पर बिछे बिस्तर पर सुला दिया था. दिन में मुझे उस दालान की मनाही थी, जहां मन्नो दिन भर रही थी—तीसरे दिन उसका भाई उसे आकर ले गया था. और मैं उसके अगले दिन अपनी नौकरी पर दिल्ली चला आया था.

"कैसी है वह मन्नो?—अब तो वह पंद्रह साल की हो गयी होगी. बड़ी लगती होगी. वह गोरी है या काली?—कैसा नाक-नक्शा है? क्या वह 'गांव की छोरी' फिल्म की 'छमिया' जैसी होगी?—मैं तो खुद उस फिल्म के जग्गू जैसा लगता हूं.—लंबे बाल भी रख लिये हैं मैंने. चमचमाता जूता, टेरीलीन की सफेद बुशर्ट और काली पैंट पहनकर जब मैं चमकती हुई साइकिल पर बैठकर आफिस के सामनेवाली सड़क से निकलता हूं तो शहरी छोकरियां मेरी तरफ निगाह उठाकर देखती हैं और फिर आपस में कुछ बातें करके हंसती-मुस्कराती हैं.

मैं दिल्ली शहर की दरियागंज बस्ती में अग्रवाल ब्रदर्स के यहां चपरासी हूं. वहां उनकी किताबों की दूकान है और शहर से कोई दस कोस दूर शाहदरे में अपना छापाखाना है. मेरी अब दो सौ रुपये महीना तनखा और दूकान के पास गोदाम की एक कोठरी में रहने का इंतजाम है. नीचे गली में दो सार्वजनिक टायलेट हैं, वहां मेरा नहाना-धोना हो जाता है. पास में ही एक ढाबा है, जहां पहले पचास और अब सौ रुपये महीना में दोनों वक्त का खाना और सुबह-शाम नाश्ता मिल जाता है.

इन्हीं सब सपनों में खोया-खोया मैं सो गया था कि आवाज कान में पड़ी, "अरे ओ किशोरी, क्या धू धू करके खुर्राटे ले रहा है! उठ बे!"

मुन्ने की आवाज और हिंदोड़ ने मुझे जगा दिया. मैं हड़बड़ाकर उठा और हाथ में बंधी घड़ी को नींद से भरी लाल आंखों से ताकता हुआ बोला, "अबे, मुन्ने के बच्चे, अब उठाया तूने?—तुझे पता नहीं था कि मेरी बस ठीक दस बजे छूट जायेगी. नौ बजकर सात मिनिट हो गये हैं."

मैं चटपट धड़ाधड़ सीढ़ियों से नीचे उतर, कोठरी के नीचे बाथरूम में घुसा. जल्दी से निबटकर नल के ठंडे पानी की धार के नीचे खुशबूदार गुलाबी लक्स साबुन से नहाया, तौलिया बांधे ऊपर कोठरी में घुसा और अपनी काली टेरीलीन की पैंट और गुलाबी बुशर्ट, एक मैले बनियान के ऊपर पहन, कंघे से बाल संवार, काले बूटों को मोजे पर कसता हुआ फटाफट तैयार हो गया गांव जाने को.

"अबे, जरा बक्सा नीचे ले आ मुन्ने! मैं स्कूटर पकड़ता हूं." कहकर मैं धड़ाधड़ नीचे सड़क पर पहुंच स्कूटर-स्कूटर चिल्लाया. स्कूटर तपाक से आकर सामने रुका. उधर से मुन्ना हाफंता-हाफंता स्कूटर तक पहुंचा, "अबे किशोरी, बक्सा कहां है? कोठरी में तो दिखाई नहीं देता है."

"क्या बक रहा है साले? मजाक करने का टेम है क्या यह?" मैंने झल्लाकर कहा.

"अबे, बक तू रहा है या मैं? मुझे नहीं मिला खुद जाकर देख." मुन्ने ने घबराकर कहा. मैं एक छलांग भर कोठरी तक पहुंचा. बक्सा गायब था. चारपाई के नीचे मैं अपने हाथों उस बक्से को रात को रखकर सोया था. नया गोदरेज का पीतल का ताला उसमें लगाया था. अपनी कोठरी की कुंडी अंदर से लगायी थी, खिड़की बंद थी. मुन्ने ने सुबह चार बजे रात की ड्यूटी से आकर खिड़की के टूटे शीशे से हाथ डालकर कोठरी की कुंडी खोली थी. और बराबरवाली चारपाई पर आकर तीन घंटे नींद ली थी. सात बजे उठकर कुंडी बाहर से बंद कर वह बाजार से दूध लाया था. चाय बनायी थी और अंदर की कुंडी भी उसी तरह फिर बाहर से हाथ डालकर बंद की थी और खोली थी. मैं मस्ती की नींद सो रहा था. क्या इस बीच किसी ने बक्सा सरका लिया?

कल सारे दिन मैंने अपने दोस्त मातू को साथ लेकर गौना कराने जाने की तैयारी की थी. . .मन्नो के लिए अपनी तरफ से रेशमी साड़ियां, चूड़ियां, शाल और रिबन लाया था. बापू के व अपने लिए स्वेटर, मां के लिए एक छपी साड़ी, गुलाबी नायलोन पर जरी के फूलों की साड़ी दुलहिन के लिए मंगायी थी. पीतल पर सोने की पालिश हुई पोंहचियां और तगड़ी भी दरीबे जाकर खरीद लाया था. अपनी भी दो बुशर्टें, एक पैंट, पाजामा, एक तौलिया वगैरह-वगैरह सब उसी बक्स में रखकर मैं निश्चित होकर सो गया था. अब? मैं अवाक खड़ा रह गया. काटो तो खून नहीं. सिर पीट बैठा. रुलाई छूट पड़ी. धम से जमीन पर बैठ गया. "क्या करूं अबे मुन्ने! मैं तो लुट गया. ये साले मातू के दोस्त हरामी पिल्लू का काम है. मातू ने उसे बताया होगा कि मैं गौना कराने जा रहा हूं. पहले तो रोज ही शाम को मातू के साथ आता था. इधर हफ्ता भर से गायब है हरामी. आज सुबह आया था क्या यहां?"

मुन्ना एकदम घबरा गया था सारी बात से. बोला, "नहीं, यहां तो नहीं आया, पर सुबह चाय की दूकान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरफ देखा था उसे. वहां चाय पी रहा था और मैं तेरी चाय के लिए दूध लेने गया था. पूछ रहा था कि क्या तुम सुबह ही सुबह गांव चले गये."

"अबे उल्लू! वह बता रहा था कि साइकिल की दूकान के पास ही जहां वह काम करता है, गिरहकट लौंडों के एक गिरोह का अड्डा है. मेरा बक्सा पिल्लू ने ही उन लोगों से उड़वाया है. सामने पड़े तो मैं मार दूंगा साले को."

मुन्ना हक्का-बक्का हो बातें सुन रहा था. उसका दिमाग सुन्न हो गया.

"पर अब क्या करूं?. . . बस का टाइम निकल गया. पर गौने का मुहूर्त नहीं टलने दूंगा. गौना परसों है. आज और कल बीच में है, सो बक्सा ढूंढूं क्या? मान लो, आज ठहरा भी और आज-कल के बीच बक्सा न मिला तो? सारा सामान जुटाकर जैसे भी हो, कल गांव पहुंचूंगा—गौना कराऊंगा—कराऊंगा—कराऊंगा." मेरी रुलाई फूट पड़ी थी.

शोर-शराबा बढ़ा. चारों तरफ के पास-पड़ोसी घेरकर खड़े हो गये. चोरी के किस्सों का दौर शुरू हुआ. घंटा भर सोच-विचार और अफसोस-घबराहट में बीता. "अरे थाने चलो. पुलिस में रपट तो लिखाओ कि कितना नुकसान हुआ है."

"अरे यार! गांव में इसके बापू को खबर तो दो किसी तरह से कि चोरी का हादसा हो गया है. गौने का मूहरत एक महीने बाद का निकलवा लें."

". . . नहीं. . . नहीं. . नहीं! मैं अभी जाऊंगा गांव. गौना कराऊंगा. अम्मा और बापू अपने पास से, जो कपड़ा गहना होगा, जुटा देंगे. ऐसे नंगे-भूखे घर का नहीं हूं मुन्ना कि एक बक्सा माल चोरी चला गया तो गौना रोक दूं. मैं जाऊंगा...जाऊंगा, जरूर जाऊंगा. वापस आकर साले पिल्ले की जान निकालूंगा. मैं भी अहीर का बेटा नहीं जो उससे बदला न लूं और एक-एक धज्जी कपड़े की न रखवा लूं. चल बे मुन्ना, बैठ स्कूटर पर, मुझे बस पर चढ़ा दे. साली पुलिस, वह तो उसी बदमाश से मिली हुई है. थाने में रपट करना तो नाली के मुंह में गिरना है." आंसू पोंछते और दांत भींचकर जोर-जोर से मैं बोला. चट से एक स्कूटर ठहरा, मैं और मुन्ना उस पर सवार हो फर्राटे से खट, खट, खट, खट बस अड्डे की तरफ चल दिये.

मेरी कोठरी के आसपास इकट्ठे हुए सब जने इधर-उधर हो गये. शहर में रहते हैं. सबको अपने-अपने काम-काज पर जाना है. किसे फुर्सत है कि किसी की चोरी की बात को लेकर मगज-पच्ची करें?

मन उदास था, फिर भी बक्से के गम को भूलने के लिए लपकता हुआ बस के टिकट की खिड़की की तरफ बढ़ा. टिकट खरीदा और बस में बैठ गया. बैठते ही फिर उसका गम आंखों में भर-भर उमरने लगा. क्या मुंह लेकर जा रहा हूं, गौना कराने. दोस्तों के सामने कह तो दिया कि मां के पास जेवर, कपड़े हैं, जो वह बहू को दे देगी. पर? क्या इतने दिन शहर में नौकरी करने के बाद खाली हाथों पहुंचूं बापू-मां के पास? दिल डूबने लगा. मुजफ्फरनगर भी तो बड़ा शहर है. दिल्ली जैसा ना सही, पर फिर भी. . . सीधा गांव नहीं जाऊंगा. दोपहर भर मुजफ्फर नगर रहूंगा वहीं से साड़ी, कपड़ा, बक्सा फिर खरीदूंगा. इस सबके लिए कम से कम तीन सौ रुपये चाहिए. जमा पूंजी जो दो सौ इक्कीस रुपये थी, वह मेरी पैंट की चोर जेब में सुरक्षित थी. शुक्र कि बक्से पर ही बीती, पैंट जो वहीं खूंटी पर टंगी थी, ज्यों की त्यों मिल गयी. और हां घड़ी?—घड़ी भी जल्दी में वहीं भूल आया. नींद ने सारा काम खराब किया. न रात को दो बजे 'दुलहिन' पिक्चर से आकर सोता, न सुबह बेहोशों की तरह बिस्तर पर पड़ा रहता.

'दुलहिन' पिक्चर गौना कराने से पहले देख लूं, यह सब दोस्तों की राय थी. मुन्ना तो बिचारा ड्यूटी पर चला गया था, सो मैं अकेला ही गया. पिक्चर की हीरोइन कितनी सुंदर लग रही थी.

सच, हमारे गांव में जैसे सुंदर आम और लोकाट के बगीचे, गन्ने और गेहूं के हरे-भरे खेत हैं, वे सभी पिक्चर में दिखाये गये. मेरा मन अपने गांव की याद में उदास हो आया.

लघुकथा

दलाल

● राधेश्याम

वर तलाशने का यह पहला अवसर नहीं था. इसके पहले अमर कई बार कई जगहों पर इस पवित्र कार्य के लिए घूम आया था. इसलिए वह अपनी लक्ष्मी स्वरूपा बहन की एक आकर्षक तस्वीर साथ में जरूर रखता था, वर पक्ष को दिखाने के लिए. पहली बार जो तस्वीर खिंचवायी थी, उसमें उसकी बहन ज्यादा उम्र की लग रही थी. चेहरा बहुत चौड़ा लगने लगा था. इसलिए दूसरी बार जब उसने तस्वीर खिंचवायी तो खूबसूरती के साथ-साथ उम्र का खयाल भी रखा. वास्तव में, वह तस्वीर अच्छी आयी. उसी तस्वीर को लेकर घूम रहा था. उसे पता हो गया था कि वर वाले सबसे पहले लड़की की तस्वीर की मांग करते हैं. इसलिए वह निश्चित था कि तस्वीर मांगने पर फौरन पेश कर देगा.

लगभग तीन घंटे तक वर के पिता की प्रतीक्षा करके ऊबने लगा था. इस ऊब से उसने अंदाजा लगा लिया था कि उसे जानबूझकर प्रतीक्षा करने पर मजबूर किया जा रहा था. अगर आसानी से वर के पिता आ जाते तो वर के होने का कोई महत्त्व ही नहीं होता. सो दो-चार अन्य लोगों से बातचीत कर वह चुप हो गया. उन चारों के चेहरे पर एक अजीब प्रकार की निर्लिप्तता नजर आयी. फिर काफी देर के बाद जब वर के पिता का आगमन हुआ तो उसके चेहरे पर का तनाव ढीला होता-सा लगा.

"माफ कीजिएगा, जरा एस. पी. के यहां एक जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर पर मां कैसी बढ़िया गरम-गरम रोटी चूल्हे पर सेंक-सेंककर खिलाती है. मैं शेर की तरह छाती फुलाकर गांव में घूमता हूं. पके अमरूद, जामुन, लोकाट तोड़-तोड़कर खाता और दिन भर यार दोस्तों में बिताता था. पर बापू को बुआई, कटाई, गोड़ाई के मौसम में रात-दिन मेहनत करनी पड़ती है. पसीना और खून जलते सूरज के नीचे एक हो जाते हैं. पर जब फसल पकती है, कटती है और अनाज की गाड़ियां भर-भर ढेर मंडियों में पहुंचते हैं तो उनकी आंखें चमक जाती हैं. मूंछों पर ताव देकर शाम को जब वे चौपाल में बैठ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं तो उनकी रोबीली छवि सांवले रंग में ताजे खून की उभरी हुई नसों की चमक, कैसी दिप-दिप करती है.

पर फिर भी मैं शहर चला आया. भला क्यों? क्यों का जवाब मेरे पास है. सिनेमा, बस, पैंट-कोट, सिगरेट, लंबे-लंबे बाल, अंग्रेजों का सा पहनावा. अरे, यह कहां मिलता खेती-किसानी में? सो गांव में जब कई लौंडे नौकरी की तलाश में निकले तो मैं भी भाग आया था. घर की नौकरी करते-करते ऑफिस का चपरासी बना हूं. दुनिया की चमक और रंगीनियों को देख-देखकर आंखें खुली हैं. इतनी बड़ी दुनिया की लाखों-लाखों बातें. यह सब क्या पाता अपने गांव-गांवड़े में? सो अच्छा ही तो है कि भाग आया था.

मन्नो को शहर कैसा लगेगा? . . . वह क्या करेगी सारे दिन घर में जब मैं आफिस जाऊंगा! और फिर दो सौ रुपये से हम दोनों की गुजर कैसी होगी? क्या मन्नो भी काम करके कमायेगी? . . . ना. . . ना. शहरी बाबुओं की निगाहें तो पिक्चर के जमींदार के बेटे से ज्यादा तेज और नुकीली हैं? कैसी सहेगी मन्नो सब कुछ? और मैं? क्या करूंगा अगर उसने किसी बाबू से दोस्ती कर ली तो? बड़ा भारी झमेला है. इसी सब उधेड़बुन में सोया था मैं पिक्चर के बाद.

जैसे-तैसे पहुंचा था मैं समान खरीदकर मुजफ्फरनगर से अपने गांव. मन्नो को सदा के लिए अपने घर ले आया था गौना करके. दस दिन बड़े रंगीनी के बिताकर वापस आ गया था. मन्नो की याद सताती दिन-रात. उसका सलोना अल्हड़पन, मुझ पर नशा-सा चढ़ गया था. घर की याद दुगुनी आती. खुले खेत, फलों से लदे पेड़, कच्चा लिपा-पुता घर, गरम-गरम ताजी रोटी और साग, पर लाचारी—बहुत लाचारी थी. ड्यूटी में भूल-चूक होने लगी—सपनों में डूबा रहता, आवाजें पड़ती तो चौंक-चौंक उठता.

जी बहलाने के लिए दोस्तों में बैठता. रात-रात भर ताश खेलता. कभी-कभी ठर्रा भी पी जाता गम भुलाने को. रात-दिन वही उधेड़बुन कि मन्नो को कैसे बुलाकर पास रखूं और शहरी खतरों से बचाकर गांव की-सी गरमाई में रहूं.

कभी-कभी यह सोचकर मैं कांप जाता कि शहर में आराम से रहने के चक्कर में कहीं मेरा नाम गुंडागर्दी करने-वालों की लिस्ट में अखबारों में किसी दिन छप गया तो क्या करूंगा. पिल्लू की शक्ल सामने आती. पिल्लू! मेरा बक्सा? . . . क्या करूंगा. . . की अनुगूंज मेरे दिमाग को झनझनाती, चाट जाती घुन बनी सारी इंसानियत और अकल को.

हमारे प्रकाशन के मालिक अग्रवाल साहब की किताबों की दूकान दरियागंज की चौड़ी सड़क पर थी और ऊपर की मंजिल में रिहायशी मकान था. मालकिन प्रौढ़ा अन्नपूर्णा देवी व उनका परिवार दूकान के ऊपर बने हुए इन्हीं कमरों में रहता था. पीछे की तरफ काफी फैलाव से मकान बड़ा बनाया गया था. लोहे की छड़ों से छाया हुआ जाल लांघकर रसोई-घर था और उसके पास ही भंडारघर एवं पूजाघर. अन्नपूर्णा देवी वैष्णव धर्म को अपने ढंग से पूर्णतया पालन करने में संलग्न रहती थीं, क्योंकि छोटे बेटे की बहू निर्मला पर चौके-चूल्हे की देखभाल और अन्य इसी तरह के घर-गृहस्थी के कामों का जिम्मा था.

प्रत्येक मंगलवार को पूजा-पाठ व कथा का अनुष्ठान जोर-शोर से करवाया जाता. मकान से कोई आधा किलोमीटर दूर पर 'शिवाला' था, जिसके पंडितजी को पढ़ने के लिए घर पर बुलाने व वापस उनके घर छोड़ आने का काम मुझे सौंपा गया था. कथा की समाप्ति पर मालिकन् अपने हाथों से बनाया हुआ सुस्वादु भोजन पंडितजी को कराती, जिसमें

मीटिंग में शामिल हो गया था." आते ही बाप ने अपनी व्यस्तता के लिए माफी का इजहार किया.

"जी, कोई बात नहीं. . हमें तो प्रतीक्षा करनी ही थी." उसने अपने संवाद में व्यंग्य और कटुता को भरसक छिपाते हुए कहा.

"लड़की की तस्वीर लाये हैं?"

यह सुनते ही अचानक उसकी पलकें एक बार शर्मसार होकर झुक गयीं. उसे लगा कि वह अब तक वैसा ही काम करता आ रहा था, जो दलाल किया करते थे यानि फोटो दिखाकर ग्राहक पटाने की बात. . . बस एक जरा सा फर्क था कि दलाल बदले में पैसे लेता है, जब कि वह लड़की के साथ पैसे भी देगा. इस विचार के आते ही उसके दिमाग में एक साथ कई चित्र उभर आये. बैग से तस्वीर निकालते-निकालते उसने अपने में एक अजीब परिवर्त्तन महसूस किया. जब वर के पिता ने लड़की की तस्वीर को कई कोणों से देखना शुरू किया तो वह धारा-प्रवाह फूट पड़ा—"शर्माजी, मेरी बहन इस तस्वीर से भी ज्यादा खूबसूरत है. . . बिल्कुल आपकी पसंद के लायक. घर का काम-काज भी जानती है. . . हर विद्या में निपुण . . आपके बेटे को हर हाल में खुश रखेगी. . . चाहें तो पहले आप इसे स्वयं देख सकते हैं. . . इसके बाद आप तय करें. . . मैं इतना दावे के साथ कहता हूं कि मेरी बहन आप लोगों को हर तरह खुश रखेगी. . ."इतना कहते हुए, उसके स्वर लटपटाने लगे थे. शर्म ने उसके संवादों को बांध दिया था. अभी वह लड़की का भाई नहीं, दलाल लग रहा था. □

● जे.के. कालोनी, क्लब रोके, मिठनपुरा, मुजफ्फरपुर, (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरी, लड्डू, पेड़े, खीर तो होते ही, कभी-कभी स्पेशल रसमलाई, राज-भोग वगैरह भी शामिल होते. भोजन के पश्चात पंडितजी को दक्षिणा के कभी ग्यारह, कभी इक्कीस रुपये भेंट होते. गर्मियों में धोती, बनियान, कुरता व अंगोछे का सैट और जाड़ों में ऊनी स्वेटर और कंबल या शाल दी जाती.

बड़े-बड़े अमीर और रईसों द्वारा पंडितजी की इतनी खातिर व सम्मान मेरी समझ में नहीं आता था. अपना गौना कराने जाने से पहले मैं इन पंडितजी को झुक-झुककर प्रणाम करता था. उनका आसीस लेने को उनकी तरफ ऐसे नजर लगाये रखता था, जैसे वे कोई देवता हैं, जो मुझ पर सारी खुशियां और न्यामत बरसा देंगे. पर इधर जबसे मन्नो को गांव में छोड़कर आया हूं, मेरा मन पंडितजी को देखकर एक अजीब बेचैनी से भर उठता है. 'पांव लागूं पंडितजी' न कहकर बिना हाथ जोड़े मुंह से 'नमस्ते' भर उच्चारता और कहता 'चलिये' पंडितजी का गोल, गोरा, भरा हुआ चेहरा, जिस पर लाल टीका दमकता था, और उनकी उभरी हुई तोंद, और रेशमी दुपट्टा मेरी आंखों में चुभते थे. मेरे दिमाग में वे रुपये खनक उठते, जिनसे इन पंडितजी की संदूकी भरी होगी. मेरी आंखों के सामने वह पंडिताइन खड़ी हो जाती, जो सोने के चमकदार गहनों से लदी, मुंह में पान दबाए, लाल किनारी की टसर की साड़ी में सजी दोपहर में पलंग पर बिजली के पंखे के नीचे लेटी रेडियो से आते फिल्मी गानों का आनंद ले रही होगी. कई बार जब मैं पंडितजी को घर छोड़ने जाता तो इस नजारे की एक झलक देखने को मिल जाती.

क्या मेरी मन्नो के नसीब में यह सब नहीं है? क्या मैं उसे शहर में लाकर, इसी तरह बनाकर, सेजों पे नहीं सुला सकता? इन्हीं खयालों और ख्वाबों में डूबा मैं पंडितजी की पोटली हाथ में लटकाए, फल और मिष्ठान का झोला कंधे पर झुलाता, पंडितजी से दो कदम आगे-पीछे चलता, उन्हें पंडिताइन के सुपुर्द कर, वापस आ, दूकान में अनमना-सा लग जाता.

पंडितजी को गांव से शहर में बसे हुए पच्चीस साल हो चुके थे. वे गांव और शहर के इनसानों को परखने में माहिर थे. पंडिताई करते-करते उड़ती चिड़िया के पर गिननेवाला स्वभाव पक गया था. मेरे बदले हुए रुख का राज समझते उन्हें देर नहीं लगी. एक तो, वैसे ही रसिक मिजाज थे, उस पर शहर की भक्ति रस में पगी असामियों ने उनकी मधुर मीठी वाणी की चाटुकारिता से प्रसन्न हो घर-गृहस्थी के अंतरंग मामलों में उनके स्थापन और समझदारी को, दखल देने की छूट दे रखी थी. सो, मुझसे अपनापन जताने में उन्हें जरा भी देर नहीं लगी. कहने लगी, "अबे क्या मनहूस-सी शक्ल बनाये फिरता है, बुला ले गांव से अपनी बहुरिया को. पंडिताइन भी अकेली है. उसी के पास टिक जायेगी आकर. शिवाले के दालान की बगल में एक कोठरी है, उसी में रह लेगी. रात को तू वहीं जाकर पड़ जाया करियो. सोच-फिकर में क्यों उतरा पड़ा है."

मेरे तो जैसे पंख उग आये उड़ने को. उतावली खुशी से पंडितजी के पांवों पर गिर पड़ा. 'पांव लागूं; पांव लागूं' की रट लगा दी. पंडितजी सचमुच देवता हैं. कैसे मेरे मन की बात मांप ली. मैं भी कितना मूर्ख हूं जो इन्हीं से चिढ़ बैठा था. अपने को धिक्कारा, कोसा, कमर कसकर अपने को तैयार किया कि मन्नो को जरूर ले आऊंगा और इन पंडितजी और पंडिताइन के भरोसे उसे शहर में हिफाजत और दुलार से रख लूंगा.

उसके अगले ही दिन की तो बात है कि दिल्ली में किसान-मजदूर पार्टी की तरफ से एक बड़ी रैली का आयोजन था. आस-पास के गांवों से रेलों, ट्रकों और बसों में भरकर गांव के सैकड़ों-हजारों स्त्री और पुरुष दिल्ली के लाल किले के

संस्मरण

पहली छुट्टी

■ हंसराज रहबर

बच्चों ने पहले ही एलान कर दिया था कि दो महीने की छुट्टियां आ रही हैं, खूब हुड़दंग मचेगा. आज इस हुड़दंग का पहला दिन था. मैं खाना खाकर लेटा ही था कि बोनी और मन्नू कमरे में घुस आये. खिड़की खोल दी और सोफे पर बैठकर लगे ताश पीटने.

"बेटा खिड़की बंद कर दो. लू आ रही है." मैंने प्यार से कहा.

लेकिन असर तो क्या होना था, उन्होंने मेरी बात सुनी तक नहीं. वे आपस में झगड़ रहे थे. बोनी कह रही थी, "मैं बड़ी हूं इसलिए पत्ते मैं बांटूंगी." मन्नू ताश झपटकर बोला, "जी नहीं. मैं छोटा हूं, इसलिए पत्ते मैं बांटूंगा."

शोर सुनकर पत्नी यानी बच्चों की दादी आ गयी और उन्हें समझाने लगीं, "यहां पिताजी आराम करेंगे. तुम दूसरे कमरे में चलकर खेलो."

मेरी बात की तरह बच्चों ने दादी की बात भी नहीं सुनी. बोनी ने पत्ते बांटने का काम मन्नू को सौंप दिया था और वे दोनों अपनी-अपनी गड्डी संभाल रहे थे.

"अच्छा, चुपचाप खेलो. शोर मत मचाओ और यह खिड़की बंद कर दो." और वे खुद ही खिड़की बंद करने लगीं.

मन्नू बंदर की तरह फुदककर खिड़की में जा बैठा और दादी का हाथ पकड़कर बोला, "नहीं होगी बंद खिड़की, हमें अंधेरा हो जायेगा."

"कहना नहीं मानते तो ऐसी पिटाई करूंगी, ऐसी पिटाई करूंगी..." दादी ने आक्रोश भरे स्वर में कहा और थप्पड़ ऊपर उठाया.

मन्नू मुटर-मुटर दादी की ओर देखता और मुस्कराता रहा. दादी का हाथ हवा में स्थिर था और मन्नू खिड़की में अपनी जगह डटा हुआ था. आतंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस चीज का नाम है, इस खोखले बांस जैसी धमकी में वह बिल्कुल नहीं थी. फिर यह धमकी दिन में सौ बार दी जाती थी और उस पर अमल एक बार भी नहीं होता था. मन्नू ही नहीं, बोनी भी मुस्करा रही थी जैसे दादी की यह धमकी लता मंगेश्कर का मधुर संगीत हो.

धमकी एक दिन मैंने भी दी थी और शायद मेरे स्वर में आतंक था. तब पत्नी उल्टा मुझसे उलझ पड़ी थी, "कोई पोते-पोतियों को भी ऐसे डांटता है?"

मैंने कान पकड़ा और मन ही मन कसम खायी कि बच्चे सिर में सुराख भी करें, मैं कुछ नहीं बोलूंगा. इन्हें समझाना-बुझाना जिसका काम है वही करे.

"अच्छा, चुपचाप खेलो. शोर मत मचाओ." जब कोई बस न चला तो पत्नी हथियार डालकर अपने कमरे में लौट गयी.

वे खेल भी रहे थे और आपस में झगड़ भी रहे थे. झगड़ा न हो, रूठना-मनाना न हो तो खेल का मजा ही क्या है?

"तुमने मेरी सत्ती पर सत्ती बीच में से निकालकर फेंकी है. मैं यह गड्डी तुम्हें नहीं लेने दूंगी."

"कैसे नहीं लेने दोगी? सत्ती मैंने बीच में से नहीं निकाली. ऊपर से आयी है."

बड़े जोर की 'तू तू मैं मैं' हुई और नौबत हाथा-पाई तक आ गयी.

मैं चुप लेटा देखता सुनता रहा. दखल देना न उचित था और न ही जरूरत थी.

ऐसे मौके कई बार आये. वह अपना झगड़ा आप ही निबटाते और फिर खेलने लगते.

घंटा-सवा घंटा यह सिलसिला इसी प्रकार चलता रहा. आखिरी झगड़ा इतने जोर का हुआ कि निपटारा मुमकिन नहीं हर गया. दोनों आपस में रूठ गये और पत्ते फेंक-फांककर चलते बने.

दूसरे कमरे में जाकर लेटे तो नींद ने आ दबोचा. और वे दोनों शाम के छह-सात बजे तक घोड़े बेचकर सोते रहे. □

● एस-16 नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

खुले मैदान में आ उतरे थे.

ऐसे में मैं भी उस सुबह मालिक के छापेखाने की तरफ, दरियागंज से शाहदरे की तरफ रवाना हो रहा था. रास्ते में गांववालों की इस छावनी को देखकर रुक गया. दिल में एक यीद भरी हुड़क सी उठी. मेरी आंखें उस भीड़ में अपने गांव के लोगों के चेहरे बरबस ढूंढने लगीं. नजर टकरायी बैलगाड़ियों में बैठे औरतों के गिरोह से. मन हुआ कि जाकर पूछ लूं कि वे किस गांव से आयी हैं. पर झिझक से पैर वहीं रुक गये. दूर खड़े-खड़े आंखें किसी को टटोलने लगीं, पर तभी मन ने एक झटका खाया, 'मैं भी कैसा बेवकूफ हूं. भला मुजफ्फरनगर से दिल्ली क्या बैलगाड़ी में चलकर आयेगा कोई? और अगर वह आती तो क्या कुछ खबर न करते उसके घरवाले. और मैं लंबे डग भर, आगे बढ़ा, दूसरी बस पकड़ने को जो सीधे शाहदरे ले जायेगी. बस में चढ़ने को पैर रखा ही था कि किसी ने कंधे पर हाथ रखा. और कहा, "किसोरी!"

मैंने मुड़कर देखा. सामने था पुराना लबादा तन पर डाले, मरकम और दाढ़ी-मूछोंवाला एक चेहरा, जिसके अंदर से दो नुकीली आंखें चमककर मुझे ताक रही थीं. यकायक चौंका. अरे यह तो वही साला पिल्लू का बच्चा है, जिसने मेरा बक्सा उड़ाया था! और पैसे आव देखा न ताव, बस से पैर नीचे झटकार, उस पर कूद पड़ा. मुक्के ही मुक्के उसकी पीठ पर जड़. उसे जमीन पर दे मारा. होंठों में दांत गड़ जाने से पिल्लू के मुंह से खून निकलकर दाढ़ी-मूंछों पर लिपट गया और धूल से भर गया उसका सिर. चारों तरफ गुल-गपाड़ा मच अया और भीड़ इकट्ठी हो गयी. दो-चार ने लपककर मुझे पकड़ा. मैं हांफ रहा था. झटके से हाथ छुड़ाये, हाथ थामनेवालों से. अपने आप पिल्लू को उठाकर सीधा बैठाया अपने सहारे हौले-हौले संभालकर अपने घुटने पर उसका सिर टिकाया. "जरा-सा पानी दो कोई, पानी," कहकर वह फूटकर रो उठा, मेरे सीने पर सिर लटकाकर. बैलगाड़ी में बैठी औरतों में से एक लपककर लौटा भर पानी लायी. मैंने पिल्लू के मुंह पर पानी के छींटे दिये. चुल्लु में भर-भर घूंट-घूंट पानी उसके मुंह में डाला. पिल्लू ने आंखें खोलीं और मुझे देखकर मुस्कराया. फिर आंखें मूंद लीं और पैर पसारकर मेरी याद में करवट लेकर ऐसे सो गया जैसे बरसों बाद चैन की नींद आयी हो.

आहिस्ता-आहिस्ता भीड़ वहां से छंट गयी और मैदान के उस बीच के टुकड़े में थे सिर्फ मैं और पिल्लू.

पिल्लू कोहनी का सहारा ले उठ बैठा और मेरे गले से लगकर जार-जार रोने लगा. न जाने कितनी तहों के नीचे दबा दर्द, मजदूरी और शिकवे-शिकायत का लावा कलेजा फाड़ फूट पड़ा था.

पांच मिनट मुश्किल से गुजरे होंगे, हम दो प्राणियों को विस्फोट के इस धुएं के घोंट से बाहर निकल व सिर घुटनों में दिये-दिये, एक दूसरे की तरफ साफ नजरें उठाये कि एक मोटे से डंडे ने दोनों की हिंदौड़ा, "अबे सूअरो, क्या थूथनी रगड़ रहे हो यहां बीच मैदान में बैठे! मिनिस्टर आ रही है गांव की जनानियों से मिलने. भागो यहां से." इसी दुत्कार के साथ दोनों की कमर पर एक-एक जोरदार ठक्क पड़ी. मैं और पिल्लू दर्द से तिलमिलाकर एकदम खड़े हो गये तनकर और झपटे उस सुघड़ पुलिस के जवान पर. चांटों ही चाटों की मार से उसे हलकान कर भागे तीर की तरह. पुलिसवाला डंडा लिये पीछे-पीछे भागा. पर हम दोनों ऐसे बेतोड़ दौड़े कि पुलिसवाला पगड़ी संभालता. और 'पकड़ो-पकड़ो' की चीख-पुकार करता, आखिर सिर थामकर बैठ गया. कुछ मिनटों बाद पुलिस के घुड़सवारों का पूरा दस्ता, चाबुक घुमाता, घोड़े दौड़ाता, मैदान में चक्कर लगाने लगा. मिनिस्टर की कार का हार्न बज उठा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

संपन्न

● रमेश मिश्र

वह मेरा बचपन का सहपाठी है. लगातार कई वर्षों तक हम दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते रहे, उसका रुझान पढ़ने में खास न था. हां, खास बात यह थी कि फिर भी वह मुझसे अधिक योग्य था. काफी खोजबीन के बाद मुझे उसकी असल योग्यता का ज्ञान हुआ. दरअसल वह एक नकलची छात्र था. वह नकल करता और इम्तहान में अच्छे स्तर पर सफल होता. धीरे-धीरे वह नकलबाजी में बहुत तेज हो गया. अन्य लोग उसे भारी प्रतिभा संपन्न होना स्वीकार करने लगे.

कुछ लोगों ने उसकी इस आदत को साधना कहा तो किसी ने उसके सफाईपूर्वक नकल करने को सराहा. और इसी तरह उसने नकल पद्धति के आधार पर काफी पढ़ाई पास कर ली. अब वह फख्र के साथ लोगों को अपनी शिक्षा भी बताने लगा.

कई साल बाद मेरी मुलाकात अचानक उससे कचहरी में हो गयी. उसमें वही चमक मौजूद थी. अब तक वह सरकारी नौकरी में भी लग चुका था.

कहते हैं जो जैसा सोचता है, करता है, वैसा ही बन जाता है. यह मसल मेरे मन में हमेशा के लिए साकार हो गयी.

मित्र ने बताया कि वह कचहरी में आजकल नकल विभाग के तहत प्रधान लिपिक है.

यानी नकल आज भी उसकी नौकरी का प्रमुख आधार है. कहते हैं, नकल विभाग का सबसे योग्य कर्मचारी है मेरा मित्र. □

मोटर के हार्न की आवाज के साथ दो-चार और कारें भी भारी-भरकम हस्तियों को अपने में समाये आकर रुकीं. मिनिस्टर की अगवानी के लिए गांव की औरतों को पहले से ही सरकार की तरफ से फूलमालाएं हाथों में पकड़ा दी गयीं थीं. उनकी लंबी कतार पर अपनी मुस्कराहट बिखराती, मिनिस्टर साहिबा हाथ जोड़कर, एक जरा से ऊंचे तख्त पर जा खड़ी हुईं. हिंदुस्तानी औरत दुनिया की और औरतों से कितनी अधिक त्यागमयी, ममत्वमयी और अपनी घर-गिरस्ती से जुड़ी हुई हैं, इस पर एक लंबा भाषण मिनिस्टर साहिबा ने दिया.

अपनी इतनी बड़ाई और खुशामद भरी बातें सुनकर एक बार तो गांव की भोली-भाली औरतें पानी-पानी हो आयीं. 'जय मिनिस्टर साहिबा की, जय महात्मा गांधी की' के नारों से मैदान गूंज उठा.

मैं और पिल्लू पुलिसवालों को चकमा देकर, वहीं खड़े खेमों की आड़ में गायब हो गये थे. नारों की आवाजों से हमारे कान खड़े हो गये. हम कपड़े झाड़ और बाल संवारते बिलकुल शरीफ इंसानों की तरह मैदान में जुड़ी भीड़ में आ मिले. मुझ पर मिनिस्टर साहिबा की बातों का असर जैसे दूना पड़ा. मैंने तय किया कि मैं अपने बापू को समझाऊंगा कि मिनिस्टर मैडम के मन में खेती-बाड़ी का कितना महत्व है. अपने आप भी साल में एक महीने गांव में रहकर हल चलाने का जो वायदा अपने बापू से करता रहा हूं, वह सच में पूरा करूंगा. धरती को बुआई के लायक बनाने का काम तो मेरा ही होना चाहिए. फसल की कटाई के लिए भी मैं कुछ दिन की छुट्टी मालिक से मांग लूंगा. मन्नो को शहर ले भी आऊंगा तो क्या. वह भी मेरे साथ गांव जाया करेगी. खेत के काम में मेरा हाथ बटायेगी.

पिल्लू मेरे मन में चलती इन बातों से अभी तक बेखबर था. उसकी बात ही कहां हो पायी थी मुझसे. मिनिस्टर साहिबा का लेक्चर पिल्लू को भन्ना गया. मेरी तरफ रुख किया तो देखा कि मैं मुंह बाये, बड़ी गद्‌गद् आंखों से भाषण सुन रहा था. उसने मेरी पीठ पर जोर से एक धौल जमाकर मुझे चौंका दिया. बोला, "अबे भोंदू! क्या टुकर-टुकर ताक रहा है लीडरानी को? वाह वाह! क्या चिकनी-चुपड़ी बातें मिला रही है हमारी इन गांव की औरतों के आगे. ये जनानियां भले ही इसके सामने जय-जयकारे बोल रही हैं, पर अपने मरदों के सामने जुबानों पर ताले ठुक जायेंगे. चूं भी करने की हिम्मत नहीं है उनके सामने! अबे! यह भी क्या कोई शहरू औरतें हैं जो अपने मरदों से जुबान-जोरी करती हैं. गांव की जबर औरत से उसका मरियल मरद पिट भले ही ले, पर जोरू और खसम की बहस? राम का नाम लो भय्या जो औरत मरद के सामने मुंह खोले तो."

मैंने बात का जवाब नहीं दिया. मेरा मन जो सामने हो रहा था, उससे उखड़ चुका था. मैं पिल्लू को आगे धकेलता हुआ उस नजारे से दूर होने की चेष्टा में तिरछी पगडंडी पर चल पड़ा. पिल्लू भी साथ हो लिया. थोड़ी दूर नाले पर, ईंटों का एक थब्बा सीमेंट से लिपा-पुता चबूतरे की शक्ल का बना हुआ था. हम दोनों वहां बैठ गये. पिल्लू ने जेब से बीड़ी निकाली. सुलगती बीड़ियां मुंह में दबा, फूंक-फूंककर धुआं उड़ाने लगे. इस वक्त अपने मालिक और शाहदरे के छापेखाने से बिल्कुल गाफिल हो गया. बहुत दिन बाद एक ऐसे इंसान से मिला था, जिससे अपने दिल के दर्द की बात खुलकर कह सकता था और उसकी बात सुन सकता था. मुझे अपने पर ताज्जुब हो रहा था कि कैसे मैं उसी पिल्लू से आज अंतरंगता महसूस कर रहा हूं, जिसने गौने के लिए जाते समय मेरा कपड़ों का बक्सा चुराया था.

बक्सा पिल्लू ने ही उड़ाया या उड़वाया था, यह बात पत्थर की लकीर बनी मेरे दिमाग में जमी हुई थी. बिना सबूत के किसी ऐसे यकीन की तरह, जिसकी बाबत सवाल खड़ा ही नहीं होता.

एक और अजीबोगरीब बात तब हुई, जब मेरा यह यकीन सच निकला और उस सबसे मुझे खुद पर ग्लानि हो आयी.

पिल्लू ने मुझे बताया, "साइकिल की दूकान से नौकरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूटने के बाद मैं सात दिन इधर-उधर मारा-मारा फिरा नौकरी की खोज में. जो सात-आठ रुपये पल्ले थे, वे सब खत्म हो गये, पर काम नहीं मिला. दो दिन रेलवे स्टेशन पर जाकर बाहर कुलियों के बीच पड़ा रहा, पर कुली की वर्दी और बिल्ला न होने के कारण किसी ने सामान नहीं उठवाया. भूखे पेट ने कहा कि भिखारी बनकर रोटी मांग ले. पर कोशिश करने पर भी हाथ न फैला सका मांगने को. बाद आये तू और मुन्ना. तेरे पास अक्सर आता ही रहता था मुन्ने के साथ. पर दोस्तों के पास भूखे जाना शरम की बात लगी. साथ ही साथ खीझ बढ़ती रही कि कैसे दोस्त हैं जो दस दिन से मिलने नहीं गया तो खैर-खबर भी नहीं ली मेरी. आखिर को मेरा कौन सगा था इस शहर में? सो हिर-फिरकर अपनों ही की तरफ कदम बढ़े. सारी खीझ और गुस्सा मुन्ने और तुझ पर बरसाने को उमड़ा-घुमड़ा. तुम ही तो अपने थे इस परदेस में जो मेरे साथ बैठकर चाय-बीड़ी उड़ाते थे, ताश खेलते थे, सिनेमा जाते थे. तुम्हीं ने यह खबर तक न ली कि पिल्लू जिंदा है या मरा. उसी झोंके में मैं उस चाय वाले की तरफ गया था सुबह-सुबह, देखा वहां मुन्ना सुड़क-सुड़ककर गरम चाय पी रहा है. उसको मजे से चाय पीते देख, भूख की तड़प ने मुझे तेरी कोठरी की तरफ बरबस धकेल दिया. वहां जाकर देखा कि तू नवाब बना सो रहा है. टूटे शीशे से चिटकनी खोली, देखा, बक्सा सजा रखा है गौना कराने जाने को. एक बेतुका पागलपन सवार हो आया मुझ पर—हम साले भूखे मर रहे हैं. और तुम दोनों दोस्त मौज कर रहे हो—एक ही झटके में मैं बक्से को घसीटता-पटकता नीचे ले आया था और फिर सड़क के पार पटड़ी पर रख जूतों से ठोकरें लगायी थीं, उस बक्से पर. बक्से को जूतों से पीटने के जरिये, दोस्तों पर लानत भेजकर बक्सा कोठरी के नीचे वापस रखने को उठा ही रहा था कि एक सिपाही ने मेरी यह हरकत देखी और मुझे सीधा कोतवाली ले गया. बक्सा छीन लिया गया. दो दिन हवालात की हवा खायी. महीने भर जेल काटी. हवालात और जेल में खाना मिला भर पेट. जी को कुछ चैन मिला. मजदूरी-मशक्कत तो जेल से बाहर भी करने को तैयार था, पर मिली नहीं थी. जेल में ईंटें ढोना, रोड़ी तोड़ना भारी न लगा. अकेलापन भी नहीं लगा क्योंकि जेल के एक ही बड़े कमरे में तीस कैदी थे. दिन भर जेलर की चाबुक के नीचे मेहनत करते इतना थक जाते कि रात को रोटी खाकर बेसुध सो जाते. जेल से छूटने के बाद आखिर मैं पुराने मालिक के पास गया, अपनी सारी दास्तान सुनायी. उन्होंने फिर से बहाल कर लिया मुझे. कहने लगे कि पिल्लू, तेरे जाने से तो साइकिलों की सेल ही आधी हो गयी. तू दस रुपये महीना बढ़वाने के पीछे नौकरी छोड़कर चला गया था, पर अब हम पंद्रह रुपये बढ़ाकर तुझे रखेंगे. सो मैं अब अपने पुराने साइकिलवाले लाला के पास, वहीं परेड ग्राउंड की साइकिल मार्केट में काम करता हूं. उधर ही से लपका आ रहा था गांधीनगर जाने को कि बस में चढ़ते तुझ पर नजर पड़ी. तुझे देखकर मेरा मन हुलसा और हाथ तेरे कंधे पर जा पहुंचा. किशोरी, मैंने तुझे बहुत दुखी किया. गौने का क्या हुआ? बहू को ले आया क्या?" बहुत से सवाल एक साथ पिल्लू ने किये. मैं भरे गले से हां-ना मैं जवाब देते-देते रो पड़ा. आंसुओं की झड़ी लग गयी.

पिल्लू ने कहा, "अरे बहादुर! रोना क्या अब? अगले महीने शादी कराने जाऊंगा गांव ककरौली! तुझे भी चलना होगा मेरे साथ."

पिल्लू ने छाती से चिपटा लिया मुझे. "चलूंगा यार! जरूर चलूंगा. कल तो मैं अपनी मन्नो को लिवाने जा रहा हूं. जी नहीं लगता उसके बिना." मैंने सुबकते हुए कहा.

"बहुरिया को रक्खेगा कहां? इन सहरियों के बीच? सहर में घर-दुआर बसाना आसान नहीं है." वह सशंकित-सा बोला. मैंने पंडितजी की कृपादृष्टि की बात बतायी. पंडितजी-का नाम सुनते ही पिल्लू चौंका. "भैया किसोरी, इन पंडितों-वंडितों के चकमे में मत आना. वे पंडित और पंडिताइन तो मशहूर हैं अपने जिजमानों को जमाने में. जिजमानी बनाये रखने के सारे हथकंडे जानते हैं. अगर तेरी मन्नो गुजारे लायक भी सुघड़ हुई तो उस पर ऐसा जादू करेंगे वे दोनों कि वह सारे जजमानों की चहेती बन जायेगी. और किसी दिन फुर्र से ऐसी उड़ेगी कि तू देखता रह जायेगा."

मेरे तो जैसे हाथ के तोते उड़ गये. क्या करूं अब मैं? पिल्लू ने बड़े भाई की तरह मेरी पीठ पर हाथ फेरा और तसल्ली बंधायी. "फिकर न कर, मेरी महतारी ने मेरे लिए जो दुल्हन ढूंढी है, वह दिल्ली सहर रह गयी है. उसका बापू यहीं की साइकिल बनानेवाली बड़ी कंपनी में बड़ा चौकीदार है. उसे दो कोठरी, एक बरांडा और रसोई घर रहने को मिले हुए हैं. सो मैं, तू और तेरी बहू, तीनों जने वहीं दोनों कोठरियों में मिल-बांटकर रह लेंगे. मैं तो अभी ब्याह ही कराऊंगा, गौना नहीं. सो मैं ऐसे ही रहूंगा जैसे बिन ब्याहा. तू कल गांव न जा. मेरी शादी हो जाने दे. उसके बाद ही मैं अपने ससुर के पास रहना शुरू करूंगा. अभी तो वहीं दूकान में पड़ लेता हूं. जब मेरा ठीक-ठिकाना हो जायेगा, तब ही लाइयो तू अपनी बहुरिया को."

बातें करते-करते मैं और पिल्लू अपनी हरी-भरी दुनिया में लौट आये. दिलों के घाव भर गये. आधा दिन बीत गया था. अपने-अपने काम पर गये, हल्का-फुल्का शरीर और खुशियों से भरा दिल लिये. धरती के बेटों ने, धरती से खुराक पायी, नयी धरती पर अंकुराने को. . . . □

● ए-26, पश्चिमी निजामुद्दीन, नयी दिल्ली-110013

चलते-चलते

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का अभिनंदन करने गये थे हम लोग. अभिनंदन के वक्त उनके नेत्रों में नीर छलछला आये.

"मैं रोग ग्रस्त हूं. . . मैं कम उपयोगी रह गया हूं." टंडन जी ने कहा, "मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे दुर्बल हाथों से वे व्यक्ति हिंदी का झंडा लें जो नैतिक एवं सांस्कृतिक भावना से राष्ट्रभाषा की सेवा करना चाहते हैं."- □

● रमाशंकर चंचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परछाइयां मरती हैं

• सोनिया भलोत्रा

मेरी प्रातःकालीन चर्या मुझे सप्ताह में छः दिन 13 कर्जन रोड के पास से ले जाती थी. बड़े-बड़े आधुनिक मकानों की छाया में भीगता वह पुराना, बिखरा हुआ बंगला, कुछ बेतुका-सा मालूम होता था. लाल ईंटों का वह बंगला, लज्जा से आरक्त कुछ सकुचाता सिमटता-सा खड़ा था—जैसे किसी अल्हड़, देहाती बच्ची को शहर की सभ्य उपस्थिति में लाकर उसकी अज्ञानता का आभास करा दिया गया हो. उसकी यह लज्जायुक्त आरक्तता ही थी जिसने पहले-पहल अपनी ओर आकर्षित करके मुझे अपनी चाल धीमी करने को मजबूर कर दिया था.

चार साल पहले, उस दिन, पहली बार मैंने चुपके से उसे कनखियों से देखा था. पता नहीं क्यों? शायद इसलिए कि मैं उसके संकोच को बढ़ाना नहीं चाहती थी, या फिर, शायद उसके अद्‌भुत सौंदर्य ने मुझे चकित कर दिया था, लेकिन, उन दो खिड़कियों के हटे हुए परदों और खुले दरवाजे के ऊपर, छत से बाहें फैलाकर अंगड़ाई लेता आलसी सूरज, उसके अंचल से निकलकर लॉन की हरी घास पर बिखरती किरणें, और पवन के मंद-मंद झोंकों के स्वर पर थिरकता वह पीपल का पेड़—यह सब देखकर मुझे लगा कि वह भी मुझे देखकर उतनी ही खुश है जितनी मैं उसे पाकर.

वास्तुकला के उस नमूने के हर अंश को अपने में समाकर, रंगों में नहाये हर फूल की मुखाकृति को पढ़कर और झंकारते हुए पीपल के पत्तों के स्वर में डूबकर मैं आगे बढ़ गयी, लेकिन मैं अकेली नहीं थी—उसका जादू, उसका नशा मेरे साथ था. मैं हतबुद्धि थी—मंत्रमुग्ध थी—चकित थी. पर साथ ही मेरे अंदर इस स्वप्निल संसार के वासियों के बारे में जानने की उत्सुकता भी थी. कैसे होंगे वो? मैंने कल्पना करने की कोशिश की, किंतु कर न सकी. ढेरों तस्वीरें मस्तिष्क का दरवाजा खटखटातीं, एक के बाद एक, आंखों के सामने से तैरती चली गयीं, लेकिन मैं किसी को पहचान न सकी. पर हां, मैं इस निर्णय पर अवश्य पहुंची कि उनमें से कम-से-कम एक तो सौंदर्य उपासक और अद्‌भुत मनुष्य है ही. इस विचार के साथ ही उस अत्यधिक असाधारण मनुष्य को देखने की तीव्र इच्छा मेरे भीतर पनप उठी.

अगले दिन, रोज से कुछ जल्दी ही मैं पहुंच गयी अपनी अभिकल्पना के उस घर के पास—ऐसे उत्साह के साथ जैसे मुझमें पंख लग गये हों. किंतु मेरे अंदर बढ़ता हुआ एक भय था—एक डर, कि कहीं कुछ बदल न गया हो. लेकिन वह बिल्कुल वैसा ही था—केवल उसकी चमक, उसका सौंदर्य कुछ बढ़ गया था. परिवर्तन बस इतना-सा था, कि प्रवेश-द्वार के निकट एक टहनी पर, एक नन्हा-सा पत्ता उग आया था—पीलापन लिए हुए, ताजगी से भरा, अनछुआ पत्ता—जैसे वर्षों से सोया सपना आंखें मलता हुआ जाग उठा हो.

मैं मंत्रमुग्ध-सी ऐसे ही खड़ी थी—प्रवेश द्वार के बहुत करीब, जब मुझे अपने पास किसी उपस्थिति का एहसास हुआ. 'फिर पत्तों के कुचले जाने का स्वर. . . और ऊपर देखने पर

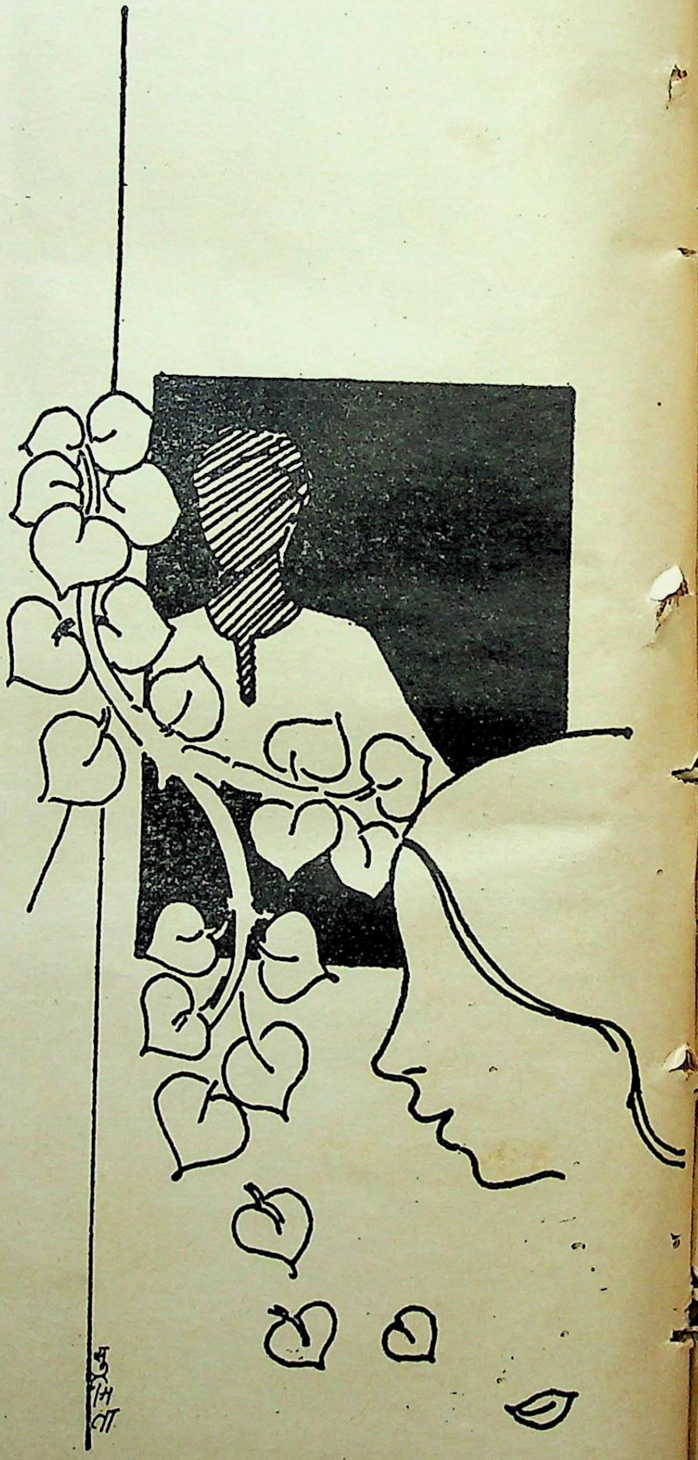

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके न रहने का दुख केवल मुझे या उसके परिवार को ही नहीं उस हरी घास को, उन पेड़-पौधों को भी था जिन्हें उसने बेइंतहा प्यार किया था . . . प्रस्तुत है मानव-मन की कोमलतम भावनाओं को उकेरती अंग्रेजी की नवोदित लेखिका की रचना अपनी मूल भाषा में प्रकाशन से पूर्व हिंदी पाठकों को—

लगा मानो पिछले दिन के तैरते हुए वे बहुत सारे बिंब मिलकर एक आकृति बन गए हों—एक स्थिर, प्रत्यक्ष आकृति. उस व्यक्ति की आंखें हरी दूब पर झिलमिलाती ओस की बूंद के समान थीं—वैसी ही चमकदार और भावना की गरमाई से नम. सुबह की स्वच्छ, सुवासित हवा को भीतर खींचती उसकी संवेदनशील नासिका, और वो अधर-जो मुझ पर आंखें टिकते ही तत्काल एक सहज मुस्कान में फैल गये. हां, यही तो वह पात्र था जिसकी खोज में मेरी कल्पना इस कदर भटक रही थी—इस अनुपम, अद्वितीय छटा का बेजोड़ अंग. उसका स्थान यहीं था—इसी जगह.

पीपल के सूखे पत्तों के झड़ने से लॉन पर एक भूरी पर्त गलीचे की तरह बिछ गयी थी और शरद ऋतु ने अपनी सराबोर पिचकारी से ढेर सारे रंग छिटकाकार उसे और अधिक जीवंत बना डाला था. वह उन पत्तों को एकत्र करने लगा. उसकी क्रिया प्रौढ़ता व अनुभव के साथ कोमलता का स्पर्श लिए हुए थी. साथ ही वह मुझसे बात करता जा रहा था. . . बात ऐसे जैसे कि वह मुझे पहली बार नहीं देख रहा हो, बल्कि बरसों से मुझे इसी जगह खड़ी देखता आया हो. हमारे बीच कोई परिचय नहीं हुआ, कोई अभिवादन नहीं, न ही किसी आम औपचारिकता की जरूरत पड़ी जो कि उस रुपहले स्वर्ग के नील गगन पर अस्वाभाविकता का दाग लगाकर उस परीलोक से जादुई सपने को तोड़ सकती. "देख रही हो इन सूखे पत्तों और इस मुरझाए फूल को, दोनों कल तक कितने जिंदा थे. . . दुख होता है न? लेकिन, प्रकृति का दिल बहुत बड़ा है. किसी जिंदगी की शुरुआत मुझे कहीं-न-कहीं हमेशा मिल जाती है जिसके साथ मेरा अंतर फिर से जी उठता है. देखो तो जरा इस पत्ती को, कैसे मिचमिचाते हुए अपनी मुंदी पलकें खोलने की कोशिश कर रही है. . ." उसके स्नेहिल स्वर से वात्सल्य इस तरह छलक कर उमड़ा पड़ रहा था जैसे वह नन्हीं-सी पत्ती उसकी अपनी चहेती बच्ची हो.

दिन महीनों में बदलते गये, महीने सालों में. समय-साज ने जो धुन छेड़ दी—ऋतुओं की पायल उसी धुन पर छनकती चली गई. मैंने उस बगीचे को न जाने कितनी बार तरह-तरह से अपनी रंगीन दुनिया प्रदर्शित करते देखा लेकिन हमेशा सौंदर्य से छिटकते हुए अभूतपूर्व परिधान पहने हुए. मैं 13, कर्जन रोड के स्वामी को रोज देखती थी, उसी तरह जिस तरह उस स्वर्गीय लोक पर मंडरानेवाली चिड़ियों और तितलियों को. मेरे गुजरने पर वह हमेशा पीपल के सूखे पत्तों को इकट्ठा कर रहा होता. हम मुस्कराते, एकाध बात करते और फिर मैं अपनी राह चली जाती. यह मेरी चर्या की कभी न टूटने वाली कड़ी बन गई लेकिन कभी भी नीरस नहीं; यही तो पूरे दिन का सबसे उजियारा, सबसे चमकदार हिस्सा था.

एक दिन सुबह-सुबह मेरे मित्र ने मुझसे कहा, "समय के पंख होते हैं मेरी बच्ची, और जिंदगी छोटी है. लेकिन जिंदगी की नियामत तुम्हें मिल गई, अगर तुमने दुनिया में रहकर उसकी छिपी हुई सुंदरता को पहचानना सीख लिया. हम नश्वर मरकर जो खोते हैं—वह है हमारी समझ. हमारी मौत हमें आंख बंद करके इस जमीन पर लेटने को मजबूर कर देती है. . .और मजबूर कर देती है उस सबसे नाता तोड़ने को—जिन लोगों को, जिन जगहों को, जिन चीजों को कभी हमने चाहा था, प्यार किया था." उसकी भरभराई आवाज क्षीण होकर फुसफुसाहट में बदल गई थी. मेरी उपस्थिति में आज तक उसका यह सबसे लंबा वाक्य था. उसकी दयालु आंखों में दुख की काली परछाई तैर रही थी. और मुस्कराने के उसके असफल प्रयास में गहरा तनाव व्याप्त था. पत्तों के अपने उस कुम्हलाए खजाने को उठाने के लिए जब वह नीचे झुका तब मैंने पहली बार देखा कितना दुर्बल हो गया था वह. . . कितना क्षीण. . . यहां तक कि झुकते हुए उसे अपने पीपल के तने का सहारा लेना पड़ रहा था. हां एक बदलाव आ गया था. इस व्यक्ति के शरीर में, जो कभी अपने काम में इतना चपल, इतना फुर्तीला हुआ करता था. और मैं अब तक अंधी थी जो इस बदलाव को देख तक न सकी.

मेरे किसी भीतरी कोने में एक आवाज सारा दिन चेतावनी बनकर मेरे कानों से टकराती रही, और अगली सुबह मैं बेतहाशा दौड़ती हुई पहुंच गयी. पहले की तरह ही, मन में एक मूक प्रार्थना करती हुई. मेरे वहम ने मुझे चिंतित कर दिया था. सब कुछ पहले जैसा हो. . . मेरी कल्पना का वह घर. . .मेरा अपना घर. . .किंतु आह. . .! ऐसा नहीं हो सका. मेरा मित्र वहां नहीं था. मैंने दौड़ लगाते हुए पीपल के नीचेवाली उस जगह को देखा, लेकिन वह अपराधी भाव से निगाहें नीची करने के सिवाय कुछ भी न कर सकी. मेरी निरीह दृष्टि ने पागलों की तरह उस जगह के हर कोने को खोजा. . .टटोला. मैं प्रतीक्षा करती रही. उस दिन दरवाजा बंद था लेकिन वे दो खिड़कियां अभी भी खुली थीं. कोई छोटी-सी आवाज भी कहीं सुनाई नहीं देती थी और सब कुछ एक दम स्तब्ध था. मुझे ऐसा लगा. . .बस लगा ही, कि कहीं कुछ अधूरा रह गया है.

मेरे हाथ गेट तक बढ़े, लेकिन, मैंने उन्हें पीछे खींच लिया. इतने सालों से मैंने आज तक इसकी सीमा को पार नहीं किया था. मैं हमेशा इसके बाहर से ही अपने मित्र से बात करती आई थी. उसका परिवार भी यहां रहता था, लेकिन मैं उनके बारे में कुछ नहीं जानती थी. सच तो यह था कि स्वयं उसके विषय में भी मुझे कोई तथ्यपूर्ण जानकारी न थी—यहां तक कि उसका नाम भी मुझ पता न था. मैं सदा से इसको अपनी अभिकल्पना, अपना घर समझती आई थी, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

हादसा

■ महेश दर्पण

जैसे-जैसे समय खिसक रहा था अंधेरा गहराता जा रहा था. सड़क पर लगे बिजली के खंभों से आने वाली रोशनी दिये की टिमटिमाती लौ-सी चमक दे रही थी. दिल्ली की बसों का भला क्या ठिकाना. आये तो अभी आ जाये, न आये तो कभी न आये... घड़ी देखने पर जग्गो बाबू को लगा कि देर काफी हो चुकी है. अब अगर पांच-दस मिनट तक और बस न मिली तो समझिए आज की रात घर पहुंचना नामुमकिन ही है.

'...देखें शायद कोई लिफ्ट ही दे दे!' सोचकर जग्गो बाबू अपनी ओर आनेवाले स्कूटरों को, हाथ से रुकने का संकेत करने लगे. यूं तो दो-तीन कारें भी गुजरीं पर जग्गो बाबू जानते थे कि कारवाले भला उन्हें क्यों बिठाने लगे! वे उनके संग बैठने की औकात रखते होते तो इस वक्त क्यों बस-स्टॉप पर इत्ती देर से खड़े-खड़े हैरान हो रहे होते.

घड़ी की सुई के साथ-साथ जग्गो बाबू के दिल की धड़कन भी गति पकड़ने लगी थी... महीने भर की तनख्वाह जेब में हो और रात को बारह बजे आप बस के इंतजार में खड़े हों... तो इसके सिवाय और हो भी क्या सकता है. कई स्कूटरवाले आये और बगैर रोके आगे बढ़ लिये. जग्गो बाबू को लगा कि बड़े और छोटे शहर के फर्क को लेकर लोग यों ही नहीं झींकते फिरते. इस वक्त अगर वे अपने मेरठ में होते तो इत्ती देर खड़े रह सकते थे भला! दसियों साइकिलवाले रुककर खुद ही पूछ लेते... "क्यों मास्टरजी, घर चलनौ हो तो म्हारी गैल बैठ लेओ!" खयालों की दुनिया ने जग्गो बाबू को सचमुच मेरठ पहुंचा दिया था. वे भूल ही गये कि इस वक्त वे दिल्ली के एक बस स्टॉप पर खड़े हैं जहां सिवाय उनके और कोई नहीं है.

अचानक करीब आते स्कूटर की आवाज से जग्गो बाबू चौंक पड़े. एक बार फिर साहस करते हुए उन्होंने हाथ बढ़ाकर रुकने का संकेत दिया. पास आकर स्कूटर रुका तो जग्गो बाबू के होश ही उड़ गये. पुलिस-इंस्पेक्टर की वर्दी में स्कूटर सवार पूछ रहा था, "क्या बात है, कहां जाना है...?"

"कहीं नहीं, बस, थोड़ी ही देर में बस आने वाली है, उसी का इंतजार है... माफ कीजिएगा आपको गलती से रोक बैठा!"

स्कूटरवाला चेहरे पर अजीब से भाव लेकर चलता बना. और जग्गो बाबू सोचने लगे... 'अच्छा हुआ, समय पर अक्ल आ गई... वरना कौन जाने, मरा बिठाकर ले ही जाता और रास्ते में पूरी तनख्वाह छीन-छानकर कहीं भी पटक जाता... पुलिसवालों का कोई भरोसा थोड़े ही रहा है!"

अंधेरा बढ़ता ही जा रहा था... पर जग्गो बाबू अब इत्मीनान से 'नाइट बस-सर्विस' का इंतजार करते हुए सोच रहे थे कि अभी-अभी वे कितने बड़े हादसे से बच निकले हैं! □

● बी-1, रामनिकेत, सादतपुर, पो. गोकलपुर, दिल्ली-94

देखा जाए तो मैं एक अजनबी थी—मात्र एक अपरिचित. मैंने अपने को बहलाने की कोशिश की कि मेरा मित्र कल एक बार फिर, पहले की तरह बाहर होगा, आगे चल दी.

हफ्ता भर बीता, दो हफ्ते गुजर गये. पीपल के पत्ते पेड़ के नीचे फिर जमा हो गए थे. कुछ ढीठ जंगली पौधे लॉन में उगने लगे थे. हमेशा से कहीं ज्यादा फूलों ने मुरझाकर सिर नीचे गिरा लिए थे. पेड़ पर पत्ते गंभीर थे. हवा ने जैसे इस बदलाव को मांपकर एक गहरी चुप्पी साध ली थी.

मैं व्याकुल हो उठी. कितने ही विचार मेरे दिमाग में घुमड़ने लगे. कहां था मेरा मित्र? कैसा था वह? मैंने आखिर उसका पता लगाने का निश्चय किया. अगली सुबह सूरज की उगती किरणों के साथ मैं जाग उठी और तीसरी बार फिर से मैंने अपने घर से 13 करजन रोड के बीच की दूरी तय की.

पिछले 24 घंटों में वहां मेरे मित्र को कुछ हो गया था. उस जादुई वातावरण की स्पर्शनीयता कहीं खो गई थी. खिड़कियां अब बंद थीं. गेट ताले से जकड़ा हुआ था. हवा क्रोध से पागल हुई जा रही थी. जैसे किसी की मौत पर क्रंदन से भरा चीत्कार करते हुए उसने नाजुक टहनियों से पत्तों को नोच-नोचकर पीपल के नीचे उस सूखी पर्त पर फेंक दिया था. उनको उठानेवाला कोई भी न था. स्नेह की छांह तले पला वह लॉन स्नेह का साया छिन जाने से झुलस-झुलसकर तहस-नहस हुआ जा रहा था और उस झुलसन से अपने आपको बचाने की कोशिश करनी भी उसने छोड़ दी थी. केवल एक सूरज ही था जिसकी गरिमा वैसी ही थी. उसकी चमकती हुई नटखट चुलबुली किरणें ओस की बूंदों के साथ अठखेलियां कर रही थीं लेकिन ओस के होंठों पर पहले जैसी झिलमिल मुस्कान अब नहीं थी. हरी घास पर पड़ी वह फीकी ओस डबडबाये हुए आंसुओं की तरह लग रही थी—उस घास के आंसू जो शोकाकुल होकर, रातभर, बिलख-बिलखकर रोई थी—ऐसे इंसान के लिए जो उनको देखने के बाद, जानने के बाद, परखने के बाद, छूने के बाद थककर लेट जाने को मजबूर हो गया था. उन सब लोगों, चीजों और जगहों से नाता तोड़कर, जिनको कभी उसने चाहा था! □

■ अनुवाद : ऋचा नागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ भरतमुनि के वंशधर ॥

वह रोज सुलतागंज की गली से निकलकर एस. पी. वर्मा रोड तक पैदल आता था––गांधी मैदान से होते हुए. एक पुरानी खड़खड़िया साइकिल उसके साथ घिसटती हुयी चलती थी––कभी पंक्चर, कभी चेन उतरी हुई तो कभी पैडल टूटा हुआ. हमारी मुलाकात उनसे 'तुगलक' के पूर्वाभ्यास के दौरान हुयी थी. फिर तो गहरी छनने लगी. लेकिन इस छनने के बीच ऐसी बात नहीं थी कि दोनों एक-दूसरे की बातें आंख मूंदकर मान लेते हों. साक्षात्कार के लिए पकड़ा तो मुस्कुराते हुए उसने चुप्पी तोड़ी, "अभी तो शिक्षार्थी हूं यार. . .पढ़ने-गुनने वाले को चुपचाप पढ़ने पर ध्यान देना चाहिए. . . बोलना तो मास्टरजी लोगों का काम होता है!"

परवेज अख्तर से हृषिकेश सुलभ की बातचीत—

"राजनैतिक स्थितियों के प्रभाव में पटना का रंगमंच विकसित हुआ है."

▣ निर्देशक भी तो मास्टर होता है?
नहीं. वह दर्शकों का नाट्य दल के बीच प्रतिनिधि होता है.

▣ पिछले डेढ़ दशक में. . .
तुम मानोगे नहीं?

▣ हां, तो पिछले डेढ़ दशक में पटना रंगमंच की क्या उपलब्धियां रहीं?
पिछले दस-पंद्रह वर्षों में रंगकर्म के प्रति पटना के रंगकर्मियों और दर्शकों का एक खास दृष्टिकोण सामने आया है. सन् सत्तर के पहले नाटकों के चयन और प्रस्तुति को लेकर कोई गंभीर दृष्टि नहीं थी. चिंतनशील नाटकों के मंचन की परंपरा अरंग की स्थापना और कला संगम की प्रस्तुति 'आधे-अधूरे' से शुरू हुई. सन् चौहत्तर-पचहत्तर से समकालीन राजनीतिक स्थितियों के प्रभाव में पटना का रंगमंच विकसित हुआ. पटना में कला संगम की प्रस्तुति 'जुलूस' के प्रदर्शनों से भी एक मोड़ आया, जो बाद में पूरे प्रदेश में नुक्कड़ नाटकों के प्रदर्शन के लिए प्रेरणा स्रोत बना. कुछ नाट्य दलों और निर्देशकों ने सकारात्मक वैचारिकता वाले आलेखों की प्रस्तुति की, जिससे दर्शकों की भागीदारी बढ़ी!

▣ पटना रंगमंच का स्वरूप क्या होना चाहिए? और संभावनाएं क्या हैं?
संभावनाएं तो अशेष हैं. . . और स्वरूप? तो यहां रंगकर्म का स्वरूप गैर पेशेवर है. रंगमंच से जुडे हुए लोग होल टाइमर नहीं हैं. जरूरी है कि ऐसी स्थितियां बनें ताकि लोग होल टाइमर हो सकें. इसके लिए बिहार में एक प्रशिक्षण केंद्र का होना जरूरी है. फिर दूसरे चरण में रंगमंडल का निर्माण कम से कम प्रस्तुति के स्तर पर पेशेवर होना तो बेहद जरूरी है और यह तभी संभव है, जब सरकारी संरक्षण मिले. इप्टा (जन नाट्य संघ) जैसा नाट्य दल-जो एक निश्चित विचारधारा से जुड़ा है–प्रस्तुति के स्तर पर पेशेवर हो सकता है, पर संगठन के स्तर पर नहीं.

▣ क्या इप्टा सी. पी. आई. का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक संगठन है?

नहीं! इप्टा सी.पी.आई. का सांस्कृतिक संगठन नहीं है.

▣ तो फिर इप्टा का राजनीतिक चरित्र क्या है?

इप्टा की प्रतिबद्धता जीवन और समाज से है. यह संगठन शुरू के दौर से ही प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत है. किसी भी सांस्कृतिक संस्था का कोई न कोई राजनीतिक चरित्र अवश्य होता है. यह चरित्र इस बात पर निर्भर करता है कि वह संस्था किसका पक्ष लेती है. इप्टा निश्चित तौर पर बहुसंख्यक शोषित, पीड़ित जनता की पक्षधरता के साथ जनता में राजनीति के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करना चाहता है?

▣ वह कौनसी राजनीति है?

वामपंथी राजनीति. मैं यही मानता हूं.

▣ राजनीति कला को निर्देशित करती है या कला से...?

दोनों एक-दूसरे से परस्पर संबद्ध हैं. किन्हीं खास स्थितियों में राजनीति पूरे समाज को निर्देशित करती है. जब राजनीति भटकाव का शिकार होती है तो उसे कला से ही सही निर्देश मिलता है.

▣ तुमने प्रशिक्षण कहां पाया?

मैं स्वप्रशिक्षित हूं—ऐसा नहीं कहता, हालांकि मैंने बहुत कुछ अपने अनुभवों और सहयोगियों से सीखा है. अपने लिए गंभीर रूप से रंगकर्म की शुरुआत मैं 'कला संगम' से मानता हूं. इसी नाट्य दल के साथ तुगलक, अंधायुग, जुलूस और बल्लभपुर की रूपकथा आदि नाटकों में अभिनय करते हुए सतीश आनंद से संपूर्णता में रंगकर्म के प्रति सही दृष्टि मुझे मिली. स्व. महावीर सिंह आजाद से रूप-सज्जा का प्रशिक्षण मिला.

▣ नुक्कड़ नाटकों में घिसे-पिटे राजनीतिक मुहावरे दुहराये जा रहे हैं और रंगकर्म का व्याकरण भी छूटता जा रहा है, क्यों?

जीवन के विविध पक्षों से दूर होकर कोई भी कला जीवित नहीं रह सकती. नुक्कड़ नाटक का अब तक का विकास सीमित दायरे में हुआ है. रंगकर्म की अनिवार्य शर्तों से अलग होकर कोई भी समस्या, विचार और कथानक किसी भी शिल्प में सही ढंग से अभिव्यक्ति नहीं पा सकता.

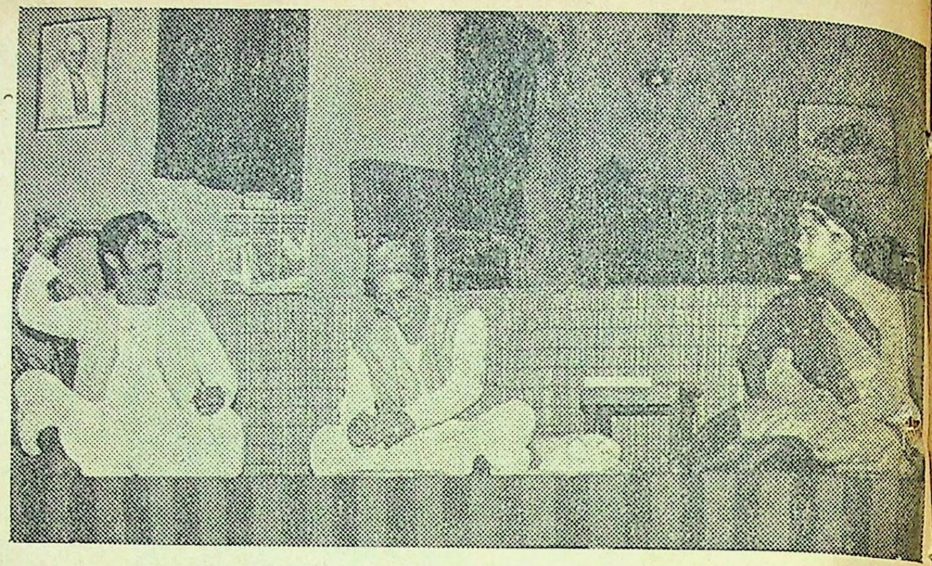

▣ तुमने जुलूस के कई प्रदर्शनों में भाग लिया है. क्या अनुभव रहा?

जुलूस का बूढ़ा मेरी अब तक की सबसे ज्यादा प्रिय भूमिका रही है. यह नाटक एक अनूठी शैली में है. मेरे लिए तो सर्वथा नया अनुभव था. बूढ़ा हताश पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है. उसने जो कुछ भी सोचा या करना चाहा—सब कुछ सामाजिक विसंगतियों के बीच फिसलता गया. बूढ़े का चरित्र नाटक में बेहद भावुक स्थितियों से शुरू होता है. धीरे-धीरे असफलता जनित परिस्थितियों की निराशा में डूबने लगता है. नाटककार के बाद में नये मुन्ना के माध्यम से उसमें आशा और आस्था का संचार किया है. शराबी वाला अंश करते हुए थोड़ी एकरसता का एहसास होता था, पर नये मुन्ना के साथ नये समय और संघर्ष की तलाश की प्रक्रिया मुझे बेहद रोमांचित करती थी. इसके हर प्रदर्शन में बूढ़े के व्यक्तित्व का एक नया आयाम मेरे लिए खुलता था. प्रदर्शन के बाद बहुत देर तक मैं अपने को उस चरित्र से मुक्त नहीं कर पाता और घंटों उसी मनःस्थिति में जीता.

▣ अब तक हिंदी रंगमंच का क्या कोई भारतीय स्वरूप बन पाया है?

नहीं! अभी ऐसा कुछ भी पूरी तरह नहीं हुआ है. हिंदी रंगमंच आधुनिक यूरोप, भारतीय लोक नाट्य रूपों और अन्य कई नाट्य तत्वों से प्रभावित हो रहा है. यह निर्माण की प्रक्रिया है. यह प्रक्रिया समय और समाज की सच्चाइयों से जुड़कर ही विकसित होती है.

▣ अव्यावसायिक संगठन चलाने में मुश्किलें आती होंगी?

मैं तुम्हारे प्रश्न को समझ रहा हूं. हमारे अधिकांश रंगकर्मी मध्य वर्ग से आते हैं. इस वर्ग के लड़कों की अलग कुंठाएं हैं. उनकी अपनी सीमा है. थियेटर के लिए यह जरूरी है कि वे अपनी वर्गीय सीमा से बाहर निकलें. पर इसमें श्रम करना पड़ता है...

▣ और पटना रंगमंच पर अभिनेत्रियों की कमी?

इसका भी यहां कारण है. लड़कियां उच्च-मध्य या उच्च वर्ग से आती हैं. थियेटर के लिए कमिटमेंट की रेखा तक नहीं पहुंच पाती हैं. जब तक लड़कियां निम्न मध्य वर्ग से रंगमंच पर नहीं आयेंगी, पटना जैसे शहर में यह समस्या रहेगी.

▣ तुम थियेटर की किसी लड़की से शादी कर लो, थोड़ी-सी समस्या तो हल हो जायेगी.

यह व्यक्तिगत बात है. इसे आम मत करो.

▣ फिर भी.

काश ऐसा हो जाता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

सक्षम प्रहार व्यंग्य की धार

▣ डॉ. हरीश नवल

गुजराती के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार विनोद भट्ट की चुनी हुई पचास व्यंग्यकथाओं का हिंदी अनुवाद करके गोपालदास नागर ने प्रस्तुत संकलन **'देख कबीरा रोया'** तैयार किया है. इसमें संकलित व्यंग्य कथाएं प्रायः छोटी हैं जो केवल गुदगुदाती ही नहीं हैं अपितु पूर्ण व्यंजना शक्ति से प्रभावित कर सोचने पर विवश करती हैं. ये सभी रचनाएं हिंदी-गुजराती की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं.

संकलित पचास कथाएं विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत की गयी हैं यथा इंटरव्यू शैली, लोककथा शैली, पत्रात्मक, मीमांसात्मक, प्रसिद्ध कथाओं पर आधारित, परिकथा, ऐतिहासिक, फैंटेसी, पौराणिक संदर्भों से युक्त शैली जिनके द्वारा विनोद भट्ट ने राजनीति, धर्म, अर्थ, आस्था, समाज और व्यक्ति के खोखलेपन तथा हलकी वास्तविकताओं पर सार्थक प्रहार किया है. लेखक की रेंज बहुत बड़ी है—रामराज्य से लेकर रामलीला तक, विश्वामित्र के तपोभंग से लेकर एक प्रोफेसर के प्रेम पत्र तक, स्वर्ग और नरक से लेकर वकीलों तक, और कृष्ण से लेकर मोरारजी-इंदिरा तक विनोद भट्ट का व्यंग्य-लट्ठ चला है.

आत्मपरक व्यंग्य की कमी इस संकलन में नहीं है. लेखक की **'एक पुरस्कृत लेखक का निवेदन', 'वैवाहिक जीवन के पचीस वर्ष', 'मयूर को आप जानते हैं', 'चौथा साला', 'जब पति देर से घर लौटते हैं'** आदि रचनाएं इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं.

बोधिसत्व कथा शैली में विनोद भट्ट ने घूस, काला धन, नशाबंदी, आत्महत्या और प्रेम की सार्थक मीमांसाएं प्रस्तुत की हैं. एक परिकथा में गरीबी और महंगाई की व्याख्या दी है. मोरारजी देसाई की उक्ति 'निर्भय रहो' पर **'तीन निर्भय दृश्य'** रचना विशेष है. लेखक ने बहुत खूबी से पौराणिक-ऐतिहासिक संदर्भों का आधुनिकीकरण अपनी कुछ रचनाओं में किया है, जिनमें **'विश्वामित्र का तपोभंग'** शीर्षक एक लघुकथा इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में उभरती है. मेनका इंद्र के पास लौटकर आयी है और बताती है कि पृथ्वी पर तो अनेकों विश्वामित्र उसके पीछे पड़ गये, इसलिए वह भाग आयी है. इंद्र पूछता है कि तुम कौन-सा रूप धारण कर गयी थी? मेनका कहती है—"कुर्सी का." पद-लोलुपता को इतनी छोटी कथा में पूरी शक्ति से उभार देना श्रेष्ठ व्यंग्यकार की खूबी है. इसी प्रकार इसी शक्ति से लेखक ने **'इलेक्शन', 'लाटरी', 'गरीबी'** आदि को व्याख्यायित किया है.

लेखक की पकड़ बहुत सूक्ष्म है, जिन बातों पर हमारा ध्यान कभी जाता भी नहीं है, विनोद भट्ट ने उन्हीं को बहुत उभारा है. **'काफे द हैवन'** में रावण द्वारा पी गयी एक काफी के दस गुना पैसे वसूल किये गये हैं क्योंकि 'काफी पचास पैसे पर हैड' है. कुंभकर्ण के छह महीने तक सोने पर लेखक की टिप्पणी यह है कि **'कुछ विद्वानों के मतानुसार लंका का वह स्लीपिंग-पार्टनर था.'** शब्द-शिल्पी भट्ट का ऐसा शब्द-वेध इस संकलन में जगह-जगह उपलब्ध है.

इस संकलन से व्यंजना-शक्ति के कुछ उदाहरण देखिए—**'मुझे ड्राप कर उस शीतांशु के साथ तुम विवाह करना चाहती हो? नेट-प्रेक्टिस मेरे साथ और फाइनल मैच किसी दूसरे के साथ?' 'तुम्हारे बाप से मुझे बहुत डर लगता है क्योंकि उनका चेहरा डाकू जैसा नहीं, मंत्री जैसा लगता है.' 'प्रेम में पड़ा आदमी डूबता है जबकि राजनीति में पड़ा आदमी तैरता है'** इन लोगों ने **बहुत बार बीच में पड़कर, हमारे हाथ-पांव, फर्नीचर, वैवाहिक-जीवन को टूटने से बचाया है.' 'हमारा यह गधा पूरे धोबी घाट में 'पद्मश्री गधा' के नाम से जाना जाता है (पिछले वर्ष ही तो पद्मश्री मिली है.)'**

इस संकलन में कुछ रचनाएं बहुत हलकी भी हैं जैसे **'जेबकतरे का इंटरव्यू'** और **'सेवा सेवा सेवा'** कई. विषयों और पात्रों की पुनरावृत्ति भी संकलन में खटकती है. संकलन का शीर्षक **'देख कबीरा रोया'** है, परंतु इस शीर्षक को सार्थक करने वाली कोई रचना संकलन में नहीं है, यही बात कवर पर दिये गये चित्र के लिए भी है.

विनोद भट्ट के व्यंग्य, इस संकलन की भूमिका में कन्हैयालाल नंदन द्वारा लिखित **'व्यंग्य की अमोघ और लंबे समय तक असरकारी ताकत बरकरार रहनी चाहिए.'** उक्ति को चरितार्थ करते हैं.

आखिरी बात : गोपाल दास नागर का अनुवाद कहीं भी पाठक को यह महसूस नहीं होने देता कि वह अनूदित रचनाएं पढ़ रहा है. ▣

देख कबीरा रोया : विनोद भट्ट (मूल गुजराती, हिंदी अनुवाद : गोपालदास नागर) प्रकाशक : भारतीय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी. पृष्ठ, 177; मूल्य : 20 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी की अच्छी किताबें इतनी महंगी क्यों हैं?

▣ बलराम

"हिंदू मुसलमान धड़ाधड़ मर रहे थे. कैसे मर रहे थे, क्यों मर रहे थे, इन प्रश्नों के उत्तर भिन्न-भिन्न थे—भारतीय उत्तर, पाकिस्तानी जवाब, अंग्रेजी आंसर, हर सवाल का जवाब मौजूद था, मगर इस जवाब में वास्तविकता तलाश करने का सवाल पैदा होता तो उसका कोई उत्तर न मिलता. कोई कहता, 'इसे गदर के खंडहरों में ढूंढ़ो.' कोई कहता, 'नहीं, नहीं, यह ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकूमत में मिलेगा'. कोई और पीछे हटकर उसे मुगलिया खानदान के इतिहास में टटोलने के लिए कहता. सब पीछे ही पीछे हटते जाते थे एवं पेशेवर कातिल और लुटेरे बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे और लहू तथा लोहे का ऐसा इतिहास लिख रहे थे, जिसका उदाहरण विश्व इतिहास में कहीं नहीं मिलता." भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन की जननी सांप्रदायिकता पर टिप्पणी करता यह अंश है उर्दू के महान कथाकार **सआदत हसन मंटो** की सुप्रसिद्ध किताब 'मीना बाजार' का, जो मंटो के संस्मरणों का अनूठा संग्रह है. मंटो की उपरोक्त टिप्पणी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद भड़के दंगों के संदर्भ में भी कितनी सटीक है. एक सौ चौबीस पृष्ठों की इस किताब 'मीना बाजार' का मूल्य है छह रुपये. छह रुपये सुनकर आप शायद चौंक गये हों, पर राजकमल प्रकाशन की नवीनतम योजना 'राजकमल पेपर बैक्स' के अंतर्गत अब ऐसी बहुत-सी बहुचर्चित किताबें अल्प मूल्य में देश के अनेक बुकस्टालों पर देखी जा सकती हैं. छापने में बरती गयी किफायत और सावधानी के कारण आमतौर पर दो सौ पृष्ठों में समानेवाली सामग्री डेढ़ पौने दो सौ पृष्ठों में समा गयी है. इन किताबों की सफलता या असफलता से हमें इस बहुप्रचारित आरोप का जवाब भी मिलने की संभावना है, जिसका कुल जमा निचोड़ यह होता है कि हिंदी में अच्छी और साहित्यिक किताबों के पाठक ही नहीं हैं, इसलिए किताबों की अनाप-शनाप कीमत रखने के लिए हिंदी के प्रकाशक अभिशप्त हैं.

प्रकाशक कहते हैं कि पाठक नहीं हैं और हिंदी के पाठक प्रकाशकों पर आरोप लगाते हैं कि किताबें इतनी महंगी हो गयी हैं कि उन्हें खरीदकर पढ़ पाना उनकी जेब के वश में नहीं रहा. प्रकाशकों का कहना है कि जब महंगाई इतनी बढ़ गयी है तो किताबों के दामों को बढ़ने से कैसे रोका जा सकता है? तब पाठक का सवाल है कि छह रुपये की लागतवाली किताब का मूल्य पच्चीस-तीस रुपये क्यों? इस सवाल के जवाब में हिंदी के प्रकाशक एक चालाकीभरा तर्क देते हैं कि इतनी बड़ी अंग्रेजी की किताब की कीमत पैंतीस-चालीस रुपये तक होती है, फिर भी वह धड़ल्ले से बिकती है. यह कहते हुए वे भूल जाते हैं कि अंग्रेजी किताबों का पाठक आम भारतीय नहीं है, वह खास भारतीय पाठक है, जिसके अधिकांश हिस्से के लिए किताबें खरीदना और व्हिस्की खरीदना एक जैसी बात है यानी उसकी जेब को दस-बीस या सौ-पचास रुपये से बहुत अधिक फर्क नहीं पड़ता, लेकिन इस बात से घूम-फिरकर सिद्ध यही किया जाता है कि हिंदी में साहित्यिक किताबों के पाठक नहीं हैं. यह निष्कर्ष मुझे हिंदी प्रकाशन जगत का 'अर्द्धसत्य' लगता है.

गत वर्षों में हिंदी के कुछ प्रकाशकों ने इस दारुण स्थिति को समझा और इसके खिलाफ एक अभियान-सा छेड़ दिया है. एक तरफ राजकमल प्रकाशन ने 'आलोचना पुस्तक परिवार' की स्थापना कर देश के दूरदराज इलाकों तक फैले हुए हजारों प्रबुद्ध पाठकों को आधे मूल्य पर पुस्तकें प्रदान कीं तो दूसरी तरफ राधाकृष्ण प्रकाशन ने अपनी बहुचर्चित किताबें आधे से भी कम मूल्य पर 'किफायती संस्करण' के रूप में प्रस्तुत कीं. संभावना प्रकाशन ने भी 'अल्प मूल्य पुस्तक योजना' शुरू की, जिनके परिणाम काफी उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुए. प्रकाशक संस्थान, शीर्षक प्रकाशन, पराग प्रकाशन, आलेख प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, परिमल प्रकाशन और पल्लव प्रकाशन आदि अनेक प्रकाशकों ने अपनी बहुचर्चित पुस्तकों के पेपरबैक्स निकालने शुरू कर दिये हैं, या शुरू करने वाले हैं, जिनका स्वागत किया जाना चाहिए.

यों तो 1959 में हिंदी प्रकाशन जगत में 'हिंद पाकेट बुक्स' का प्रकाशन एक क्रांतिकारी संभावना लेकर शुरू हुआ था, पर वह संभावना आगे चलकर एक दुर्भावना साबित हुई. बाजार सस्ती किताबों से पट गये और रोमानी लेखकों की किताबों के संस्करण पांच-पांच लाख तक छपे. ऐसा हुआ, और डंके की चोट पर हुआ, क्योंकि इसके लिए पृष्ठभूमि पहले से ही तैयार थी. उच्च कोटि की साहित्यिक किताबें थोक सरकारी खरीदों और पुस्तकालयों पर आश्रित हो गयीं और धीरे-धीरे उन्होंने पाठकों की अपनी आधारभूमि खो दी. पांच लाख तो नहीं, पर पाकेट बुक्स की तरह अल्पमूल्य की साहित्यिक किताबों का प्रचार-प्रसार अच्छी तरह किया जाये तो उनके पचास हजारी संस्करण तो निकाले ही जा सकते हैं. 'राजकमल पेपरबैक्स' ने बीस हजारी संस्करणों का लक्ष्य रखा है, पर प्रबुद्ध पाठकों के सक्रिय सहयोग के बिना यह लक्ष्य भी प्राप्त कर पाना असंभव है. इसके पहले भी राजकमल प्रकाशन ने पेंग्विन की स्टाइल पर 'राजकमल पाकेट बुक्स' की शुरुआत 1960 में की थी, पर मामला बहुत दूर तक नहीं बढ़ सका था, पर इस बार उम्मीद की जानी चाहिए कि मामला आगे तक जायेगा. 1959-60 की वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

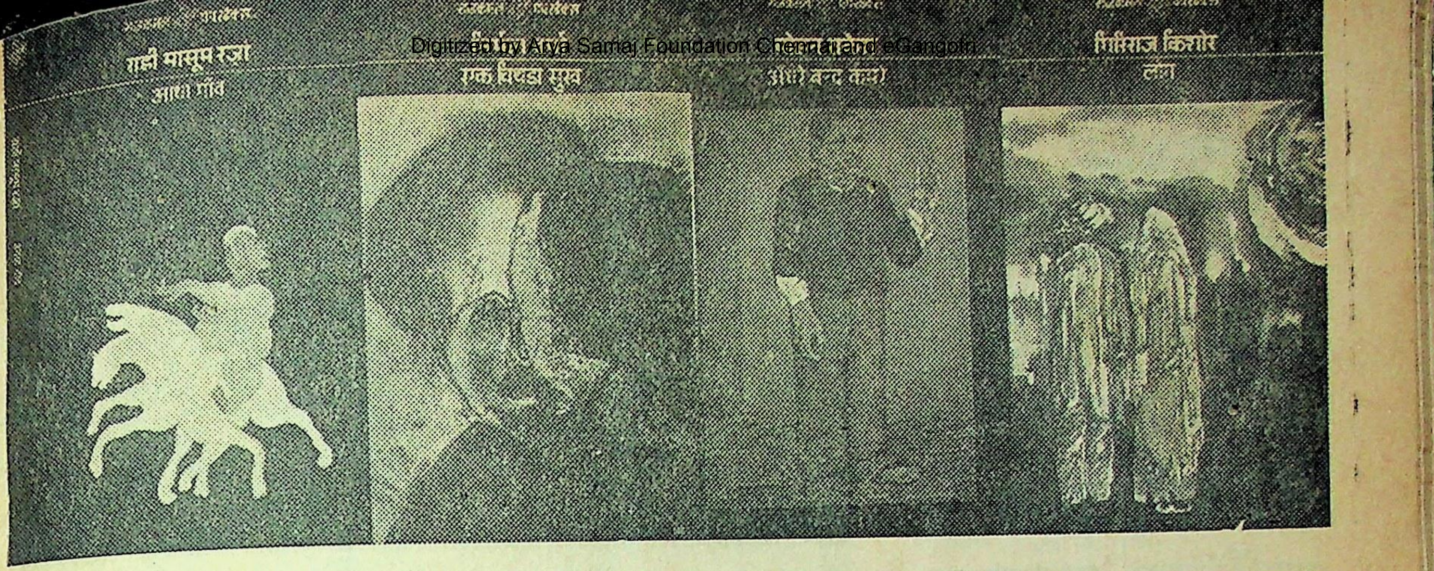

पाकेट बुक्स क्रांति असफल हो गयी थी, बावजूद इसके कि उसमें इलाहाबाद के इंडियन प्रेस जैसे कई और प्रकाशक शामिल थे. मुझे याद है कि **डॉ. नामवर सिंह** के आत्म-व्यंजक स्केचों का संग्रह 'बकलम खुद' हिमालय पाकेट बुक्स में छपा था. **कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, राजेंद्र सिंह बेदी** जैसे अनेक लेखकों की किताबों के भी पाकेट बुक्स संस्करण छपे थे, पर बाद में यह क्रांति, प्रतिक्रांति साबित हुई.

इस अभिशाप को वरदान में बदल देने के संकल्प का पहला संकेत मिलता है 'राजकमल पेपरबैक्स' के अंतर्गत एक वर्ष में राजकमल प्रकाशन द्वारा छापी गयी 42 उच्च स्तरीय कृतियां, जो सीधे-सीधे अपने पाठकों के हाथों में पहुंची हैं, बजाय इसके कि वे सरकारी गोदामों या पुस्तकालयों में पड़ी दीमकों का आहार बन रही होतीं या किसी जगह तलघर में पड़ी सड़ रही होतीं, जैसे कि नेशनल बुक ट्रस्ट की किताबें. राजकमल पेपरबैक्स की किताबों की सूची पर एक नजर डालते ही स्पष्ट हो जायेगा कि किस तरह की कृतियों का चुनाव किया गया है—राग दरबारी (**श्रीलाल शुक्ल**), एक चिथड़ा सुख, वे दिन (**निर्मल वर्मा**), मित्रो मरजानी, डार से बिछुड़ी (**कृष्णा सोबती**), अनामदास का पोथा (**हजारी प्रसाद द्विवेदी**), सुहाग के नुपूर (**अमृतलाल नागर**), रेखा (**भगवतीचरण वर्मा**), मैला आंचल (**फणीश्वरनाथ रेणु**), तमस, बसंती (**भीष्म साहनी**), शह और मात (**राजेंद्र यादव**), कुरु-कुरु स्वाहा (**मनोहरश्याम जोशी**), अजनबी (**आल्बेयर कामू**), आधा गांव (**राही मासूम रजा**) तथा लोग (**गिरिराज किशोर**) जैसे उपन्यास, **भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, अमरकांत** तथा **ज्ञानरंजन** आदि की प्रतिनिधि कहानियां, **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, फैज अहमद फैज** तथा **अमृता प्रीतम** आदि की प्रतिनिधि कविताएं, **हरिशंकर परसाई, सआदत हसन मंटो** तथा **डॉक्टर नामवर सिंह** जैसे लेखकों की प्रतिनिधि कृतियां. ये किताबें हिंदी का सामान्य पाठक खरीद सकता है, क्योंकि किताब के आकार के अनुसार कीमत छह से अठारह रुपये के बीच ही मार्च कर रही है.

राजकमल प्रकाशन की इस पेपरबैक्स योजना की परिकल्पना करने वालों में से एक श्री मोहन गुप्त से जब मैंने इनकी बिक्री की प्रगति के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि प्रारंभ में तो अधिकांश पुस्तक विक्रेता इन किताबों को अपने स्टालों पर रखने को ही तैयार नहीं हुए, लेकिन हमने बड़े धैर्य और संयम से उन्हें समझाया, पुस्तक स्टैंड बनवाकर दिये और बिकने की शर्त पर भुगतान की बात कहकर किताबें उनके पास छोड़ दीं. पहले सेट की जहां पांच-पांच सौ प्रतियां ही पूरे देश के बुकस्टालों पर रखी जा सकी थीं, वहां पांचवें सेट की ढाई-ढाई हजार प्रतियां रखी हैं. पुस्तकों की कीमतें आम पाठक की जेब को ध्यान में रखकर निर्धारित की हैं. दूसरे, हमने उत्तम कोटि की किताबों को ही इस योजना में शामिल किया है. तीसरे, इन किताबों के कवर पर **रवींद्रनाथ ठाकुर, अमृता शेरगिल, जोगेन चौधरी, अकबर पदमसी, अमिताभ दास, शांति दवे, मोना राय** तथा **सूजा** जैसे विख्यात चित्रकारों की कलाकृतियां दी हैं, जिससे पुस्तकों की संग्रहणीयता और आकर्षण बढ़ गया है.

बाजार जब सस्ते किस्म के साहित्य से पटा पड़ा हो तो ऐसा उत्कृष्ट साहित्य वहां पहुंचाना निश्चित रूप से एक जोखिमभरा कदम है. मुझे खुशी है कि राजमकल प्रकाशन ने यह साहसपूर्ण कदम उठाया और हिंदी प्रकाशन जगत को एक ऐसा रास्ता दिखाया, जिस पर चलकर ही घटिया और सस्ते साहित्य के विरुद्ध कारगर हस्तक्षेप किया जा सकता है, उत्कृष्ट किस्म के साहित्य को बचाया और बढ़ाया जा सकता है, वरना हिंदी प्रकाशन जगत जिस अंधी दौड़ के दुष्चक्र में फंस चुका है, वहां से उसे निकाल पाना दिनोंदिन कठिन से कठिन कठिनतर होता चला जायेगा. और तब, एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि न तो अच्छे हिंदी पाठक रहें और न ही अच्छी हिंदी किताबें. 'राजकमल पेपर बैक्स' हिंदी प्रकाशन जगत को बचाने के लिए की गयी एक जोखिमभरी पहल है, जिसमें सभी प्रबुद्ध पाठकों को सक्रिय हिस्सेदारी करनी चाहिए. □

▣ राजकमल पेपरबैक्स, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

महत्वाकांक्षा की असफलता को ओंप्रकाश साहित्य सम्मान

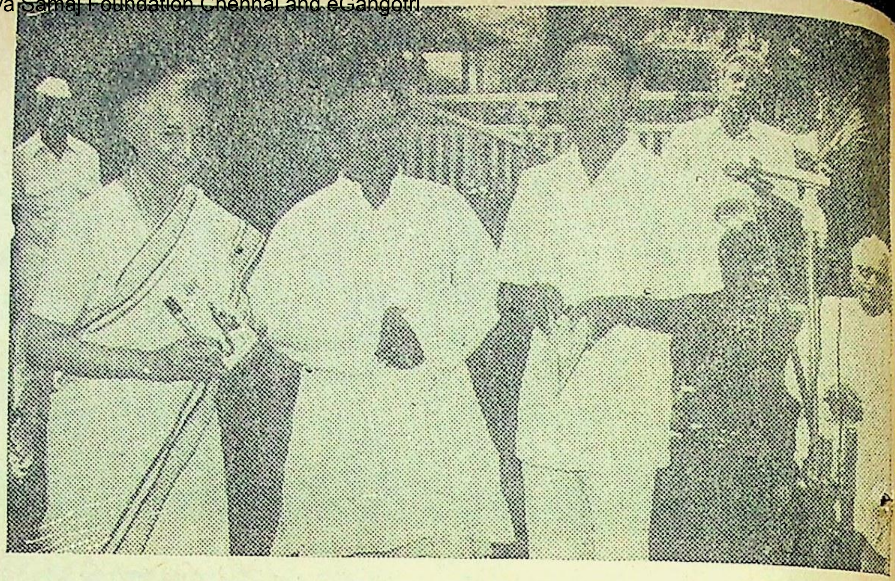

स्वर्गीय इंदिरा गांधी साहित्य तथा साहित्यकारों को प्रोत्साहित करती रहती थीं. जब रामभगत पासवान के नाटक 'जीने दो' का अपने निवास पर विमोचन किया तो उस अवसर पर राजधानी के अनेक साहित्यकार उपस्थित थे. श्रीमती गांधी ने पुस्तक की प्रशंसा करते हुए कहा था कि सामाजिक समस्याओं का विवेचन लेखकों का प्रमुख कर्तव्य है.

प्रसिद्ध लेखक डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने विमोचन समारोह का संचालन और विमोचित पुस्तक का विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया था. जैनेंद्र कुमार ने लेखक के गांधीवादी दृष्टिकोण की सराहना करते हुए बताया कि समस्याओं का अहिंसावादी समाधान ही सर्वदा उचित और सराहनीय है. □

पिछले दिनों ओंप्रकाश साहित्य सम्मान युवा कथाकार पंकज बिष्ट को उनके उपन्यास **'लेकिन दरवाजा'** के लिए दिया गया. इसके पहले यह सम्मान सर्वश्री गिरधर राठी, मृणाल पांडे, मंगलेश डबराल और उदयप्रकाश को समर्पित किया जा चुका है. 39 वर्ष से कम उम्रवाले किसी एक रचनाकार को प्रतिवर्ष दिये जाने वाले इस सम्मान में एक वर्ष तक मिलने वाली 500 रुपये प्रतिमास की राशि भी शामिल है. इसका चुनाव वरिष्ठ साहित्यकारों की एक समिति करती है. इस बार की चयन समिति में थे—सर्वश्री अजित कुमार, मनोहर-श्याम जोशी, विजयमोहन सिंह, चंद्र-कांत देवताले और मृणाल पांडे.

इस अवसर पर बोलते हुए जनकवि बाबा नागार्जुन ने स्वर्गीय ओंप्रकाश का स्मरण करते हुए कहा कि वे प्रतिभाओं की खोज के लिए समग्र भारत पर नजर दौड़ाते थे और ऐसी प्रतिभाएं खोज लाते थे, जिनका अंदाजा लोगों को नहीं होता था. व्यक्तिगत तौर पर मुझे मालूम है कि फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास **'मैला आंचल'** छपकर डेढ़ बरस तक पटना के एक गोदाम में सड़ता रहा था. ओंप्रकाशजी मुझे लेकर रेणु के पास गये और **'मैला आंचल'** को नये ढंग से प्रचारित-प्रसारित किया. उनसे **'परती परिकथा'** लिखवाया और उनका कहानी संग्रह भी छापकर रेणु को उस स्थान पर प्रतिष्ठित किया, जिसके कि वे अधिकारी थे. मैं **'लेकिन दरवाजा'** के लेखक को आशीर्वाद देते हुए कामना करता हूं कि उनकी प्रतिभा और विकसित-विस्तृत हो.

चयन समिति की ओर से बोलते हुए अजितकुमार ने कहा कि मेरे मन में ओमजी को लेकर बहुत कोमल और उत्तेजक यादें हैं, क्योंकि कहने को तो वे एक प्रकाशक थे, लेकिन उनका पूरा का पूरा गठन एक लेखक का मालूम होता था. सामान्यतया उपन्यास लोगों को अच्छे लगते हैं या बुरे, पर इधर कुछ विवादास्पद कृतियां आयीं जैसे **'कुरु-कुरु स्वाहा'** तथा **'एक चिथड़ा सुख'** आदि बहुत सी कृतियां हैं, उन्हीं में मैं **'लेकिन दरवाजा'** को रखता हूं. इस उपन्यास को पढ़ते हुए कभी आपको लग सकता है कि अरे, यह तो हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का बुनियादी हिस्सा है. हम तो यही सब बातें करते रहते हैं. इससे उपन्यास का एक नया ढांचा सामने आया है, जिसमें उपन्यास केवल एक कहानी को सुनाना या किन्हीं बहसों को उठाना नहीं है, बल्कि इसमें कविता भी जुड़ गयी है. यही क्यों, इसमें अखबार भी है, फिल्म और कला भी है. एक तरह से कार्टून भी हैं. उपन्यास एक पूरी विधा के रूप में जीवन को रूपायित कर रहा है. इसके पीछे शायद लेखक की यह सोच हो कि उपन्यास को एक साथ बहुत कुछ होना है. इस उपन्यास की बहुत बड़ी खूबी मुझे यह लगती है कि एक साथ यह ट्रैजिक भी है और कॉमिक भी. इस उपन्यास में अपने आप पर हंस सकने की सामर्थ्य है. **'लेकिन दरवाजा'** अपने आपसे, अपने व्यक्तित्व की खोट से, अपनी परिस्थितियों से निकलने की कोशिश का आख्यान है. हम कोशिश करते हैं, लेकिन जो दरवाजा है, वह बंद है. इस उपन्यास के अंत में देखें तो दरवाजा बंद ही नहीं, उसके ऊपर ताला भी लगा दिया गया है. उपन्यास की ध्वनि हताशा और निराशा की ध्वनि है, लेकिन यही ध्वनि इस उपन्यास पर प्रश्नचिह्न लगाती है.

'लेकिन दरवाजा' पर उठने वाले अनेक सवालों का उत्तर देते हुए पंकज बिष्ट ने कहा कि इसके पात्र जीवित पात्रों की नकल नहीं हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

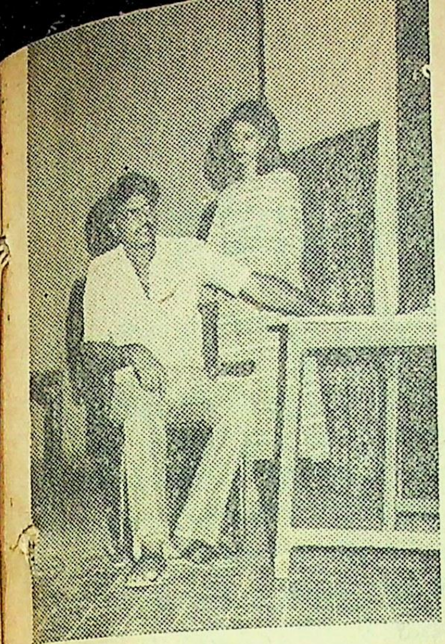

रंगमंच, संगीत एवं कला के क्षेत्र में कार्यरत युवाओं को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से बनी संस्था 'अंकुर' का इतिहास बहुत पुराना नहीं है. नयी संस्था और सीमित साधनों के बावजूद 'अंकुर' ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं. जम्मू के युवा नाट्यकर्मियों को बरनाला में आमंत्रित कर 'जुलूस' (बादल सरकार), 'भूखे भजन न होय गोपाला' (सागर सरहदी) के मंचन का अवसर दिया.

'थिएटर-79' चंडीगढ़ की नाट्य संस्था को 'अंकुर' द्वारा दिल्ली आमंत्रित किया गया, जिसने 'आथन वेले' की प्रस्तुति की. . . जो जे. पी. दास के उड़िया नाटक का पंजाबी रूपांतर है. अंकुर द्वारा प्रस्तुत केवल सूद का नाटक 'मुर्गीखाना' भी चर्चित रहा. पिछले दिनों युवा रंगकर्मी अरुण माथुर के निर्देशन में चर्चित कवि रमेश गौड़ का नाटक 'एक और चक्रव्यूह' भी 'अंकुर' द्वारा प्रस्तुत किया गया. वर्तमान सामाजिक स्थितियों पर रमेश गौड़ का यह करारा व्यंग्य कलाकारों के अभिनय में खूब उभरकर आया. 'पुनीत' की भूमिका में सुमन शुक्ला, 'विश्वास' की भूमिका में सुरेंद्र नेगी, 'कनुप्रिया' की भूमिका में सीमा अरोड़ा का अभिनय सराहनीय रहा. अरुण माथुर की निर्देशन प्रतिभा मुखर होकर सामने आयी.

स्वर्गीय विद्यासागर वशिष्ठ भारतीय पत्रकारों में एक महत्वपूर्ण स्तंभ रहे हैं. वर्षों तक '**दैनिक हिंदुस्तान**' के समाचार संपादक के पद पर काय करने के बाद जब सेवा निवृत्त हुए, तब भी उन्होंने विश्राम नहीं लिया.

अब जबकि वे हमारे बीच नहीं हैं. . अर्सा पहले लिखी गयी उनकी कविताएं और गीत '**सागर-रचना**' के रूप में संयोजित की हैं उनके सुपुत्र श्री सुभाष वशिष्ठ एवं सतीश वशिष्ठ ने. इस संग्रह का विमोचन पिछले दिनों उत्तर प्रदेश सूचना केंद्र में कथाशिल्पी विष्णु प्रभाकर ने किया. □

पिछले दिनों बंबई स्थित बिड़ला मातुश्री सभागृह में नाट्य-समारोह का आयोजन हुआ. इस समारोह का आयोजन 'पश्चिम रेलवे फाइन आर्ट्स एंड कल्चरल एसोसिएशन' ने किया था. इस नाट्य समारोह के एक नाटक 'नारी का सलीब' का मंचन स्वयं एसोसिएशन ने किया तथा अन्य तीन नाटकों की प्रस्तुति बिहार की नाट्य-संस्था 'कला संगम' ने की.

'कला संगम' ने 'एक था गधा' (शरद जोशी), 'और तोता बोला' (चंद्रशेखर कंबार) तथा 'आधे अधूरे' (मोहन राकेश) की प्रस्तुति की, जिसमें सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुति रही 'एक था गधा' की. 'और तोता बोला' तथा 'आधे-अधूरे' को भी दर्शकों ने काफी सराहा. ▣ प्रस्तुत दृश्य 'आधे-अधूरे' का है.

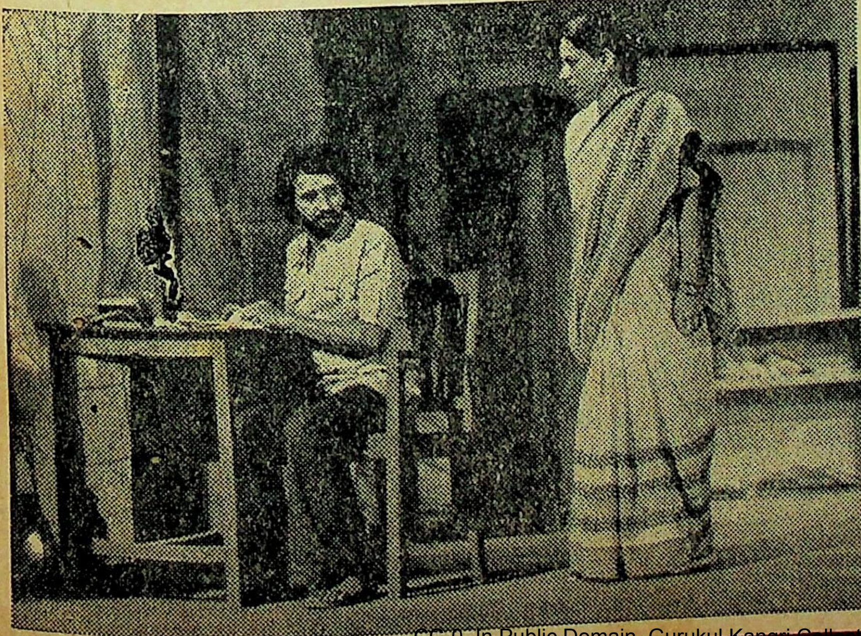

पिछले दिनों आल इंडिया आर्टिस्ट्स एसोसिएशन की ओर से शिमला के काली बाड़ी हाल में सत्रहवीं गुलशनराय एकांकी, नृत्य एवं संगीत की अखिल भारतीय प्रतियोगिता आयोजित की गयी, जिसका उदघाटन हिमाचल प्रदेश के राजस्व मंत्री श्री शिवकुमार उपमन्यु ने किया. इस प्रतियोगिता में देश के कोने-कोने से आये लगभग चार सौ गैर-पेशेवर कलाकारों ने भाग लिया. चित्र में : हिमाचल प्रदेश के वनमंत्री, कुमारी सुषमा (इंदौर) को पुरस्कार प्रदान कर रहे हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्क्स, भैरवप्रसाद गुप्त और नागार्जुन

इधर जिन लघु-पत्रिकाओं ने अपनी पृष्ठ सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए अधिक पृष्ठों के कुछ महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किये हैं, वे हैं— संपर्क (नागार्जुन विशेषांक), **कलम** (मार्क्स विशेषांक) और **लेखन** (भैरवप्रसाद गुप्त विशेषांक).

हिंदी कथा जगत में **भैरवप्रसाद गुप्त** का योगदान कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है. जहां पिछले चार दशकों में वे एक जरूरी कथाकार के रूप में चर्चित हुए हैं, वहीं उन्हें भारी उपेक्षा का शिकार भी होना पड़ा है.

भैरवप्रसाद गुप्त के सड़सठवें जन्म दिवस के उपलक्ष में प्रकाशित **'लेखन'** (72-पूराबल्दी, कीटगंज, इलाहाबाद) का विशेषांक उनके व्यक्तित्व और रचनाकार को समझने की दिशा में एक उल्लेखनीय पहल कहा जा सकता है. अपने संपादकीय में **विद्याधर शुक्ल** की यह खीझ स्वाभाविक ही है कि क्यों वही लोग उस रचनाकार पर लिखने के लिए वक्त नहीं निकाल पाते, जिन्हें हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित कराने का श्रेय एक तरह से भैरवजी को ही है. . . . बहरहाल, **'लेखन'** का यह विशेषांक जिस सामग्री के साथ हमारे सामने है, उसमें **'मेरी साहित्य यात्रा'** (भैरवप्रसाद गुप्त) लेख जहां भैरवजी से अंतरंग साक्षात कराने में समर्थ है, वहीं **'भैरवजी के व्यक्तित्व के कुछ पहलू'** आलेख में **कर्णसिंह चौहान** के माध्यम से भी उन्हें जाना जा सकता है.

भैरवजी के उपन्यासकार को समझने-समझाने की गर्ज से लिखे गये लेखों में जहां राजेश्वर सक्सेना, आनंद प्रकाश, डॉ. राजेंद्रप्रसाद पांडे, मधुकर सिंह, कमला प्रसाद, भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. कुंवर पाल सिंह, शंभुनाथ और विनोदकुमार शुक्ल के लेख पठनीय हैं, वहीं उनके कहानीकार और रेडियो-नाटककार को नजदीक से जानने के लिए कमलेश्वर, रमेश उपाध्याय, मधुरेश, आनंद प्रकाश, समाजीतप्रसाद राय, हरिहर प्रसाद, हेतु भारद्वाज, राजकुमार सैनी और दिलीपकुमार बनर्जी के लेख महत्वपूर्ण हैं.

यह एक प्रयास के रूप में किया गया सराहनीय कार्य है. . . किंतु भैरवजी जैसे सशक्त और उल्लेखनीय रचनाकार पर अब भी बहुत कुछ काम करना बाकी रह जाता है, क्योंकि भैरव हिंदी कथा साहित्य की यथार्थवादी परंपरा के उन रचनाकारों में से हैं, जिन पर काम करना हमारी मजबूरी हो जायेगी.

नागार्जुन की जीवन-यात्रा अपने आप में इतनी विविधता लिये है कि उसे समझने-परखने के लिए भी उसी तरह की संपूर्ण दृष्टि का होना बेहद जरूरी है. . और यह दृष्टि है— देश की जमीन व लोगों को परखने की आत्मीयताभरी दृष्टि और इस दृष्टि को संजोने के लिए 'संपर्क' के संपादक **सुरेशचंद्र त्यागी** ने लगभग तीस लेखकों का सहयोग लिया है. नागार्जुन के पुत्र **शोभाकांत** द्वारा लिखित संस्मरणात्मक आलेख **'मेरे बाबूजी'** पढ़कर 'बाबा' के चरित्र से अच्छी तरह परिचित हुआ जा सकता है. शोभाकांत ने यह लेख पूरी आत्मीयता किंतु सचेत दृष्टि से तैयार किया है. वे बाबा के बहुत करीब भी जाते हैं और दूर से उन्हें देखते हुए कमेंट भी करते हैं. उनका लेखक, पिता, पति और एक अलमस्त इंसान खुलकर उजागर हुआ है.

घर-संसार की माया से मुक्त रहने वाले बाबा के भीतर झांकने की सफल कोशिश मधुरेश के लेख **'अंधेरी रात में बसंत की . . .'** में देखी जा सकती है. **विष्णु प्रभाकर** ने बाबा को जितना भी समझा है, वह एक निश्छल स्वीकार है. उनके हिसाब से साहित्य ही नहीं, निजी जीवन में भी बाबा की शक्ति व्यंग्य में निहित है.

'जनवादी बाबा की जय' लिखते हुए सुरेशचंद्र त्यागी ने बाबा को कहीं भी बख्शा नहीं है. जहां जैसा पाया, लिख दिया. पर सच यही लगता है कि व्यक्ति और रचनाकार दोनों ही रूपों में नागार्जुन को समझना जितना सरल लगता है, उतना है नहीं. . . फिर भी प्रभाकर श्रोत्रिय, परमानंद श्रीवास्तव, विश्वनाथ मिश्र, आनंदप्रकाश दीक्षित और कुंवरपाल सिंह उनके बहुत नजदीक पहुंचकर उन्हें समझ सके हैं.

आज, जबकि अधिकांश रचनाकार जो खुद को प्रगतिशील या जनवादी कहलाना तो पसंद करते हैं, पर मार्क्सवाद को सिर्फ वैचारिक स्तर पर ग्रहण किए हुए हैं, सांस्कारिक स्तर पर नहीं. . . **'कलम'** (48 एम. पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-700016) का **मार्क्स विशेषांक** उनकी इस अबोधता को दूर करेगा.

संपादकीय में कहा गया है—'मार्क्सवाद के संसर्ग के पहले तक विभिन्न समाजों और उसके साहित्य की स्थितियों में जितनी भी भिन्नता क्यों न रही हो, मार्क्सवाद के प्रवेश ने उन सब में बदलाव और संघर्ष की एक ऐसी प्रक्रिया को शुरू कर दिया है, जो अपने नितांत प्रकट अर्थों में समानता लिये हुए है.' यह अपने आप में काफी सही भी है. साथ ही मार्क्सवाद और उसका प्रयोग, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र, मार्क्स मेरे रचनात्मक संघर्ष में, भारतीय साहित्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव, जैसे विभागों के जरिए एक व्यवस्थित अध्ययन से और भी पुष्ट हो जाता है.

अंत में **जैनी मार्क्स** पर **विमल रणदिवे** का लेख और **कार्ल मार्क्स** की काल-क्रमानुसार जीवन-पंजिका भी प्रकाशित की गयी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar